बंकिमचंद्र चटर्जी

आनंद मठ

विषय सूची

भूमिका

आनन्दमठ भाग-1

आनन्दमठ भाग-2

आनन्दमठ भाग-3

आनन्दमठ भाग-4

आनन्दमठ भाग-5

आनन्दमठ भाग-6

आनन्दमठ भाग-7

आनन्दमठ भाग-8

आनन्दमठ भाग-9

This is made from the content available in the following app which gives the option to copy and share the content.
https://play.google.com/store/apps/details?id=com.abhivyaktyapps.anandmath.hindi

भूमिका

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३८ - १८९४) बंगला के प्रख्यात उपन्यासकार, कवि, गद्यकार और पत्रकार थे। भारत के राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम् उनकी ही रचना है जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के काल में क्रान्तिकारियों का प्रेरणास्रोत बन गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पूर्ववर्ती बांग्ला साहित्यकारों में उनका अन्यतम स्थान है।

संन्यासी आंदोलन और बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गई बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय की कालजयी कृति आनन्दमठ सन 1882 ई. में छप कर आई। इस उपन्यास की क्रांतिकारी विचारधारा ने सामाजिक व राजनीतिक चेतना को जागृत करने का काम किया। इसी उपन्यास के एक गीत वंदेमातरम को बाद में राष्ट्रगीत का दर्जा प्राप्त हुआ। आनन्दमठ में जिस काल खंड का वर्णन किया गया है वह हन्टर की ऐतिहासिक कृति एन्नल ऑफ रूरल बंगाल, ग्लेग की मेम्वाइर ऑफ द लाइफ ऑफ वारेन हेस्टिंग्स और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज में शामिल तथ्यों में काफी समानता है।

आनन्दमठ भाग-1

बहुत विस्तृत जंगल है। इस जंगल में अधिकांश वृक्ष शाल के हैं, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के हैं। फुनगी-फुनगी, पत्ती-पत्ती से मिले हुए वृक्षों की अनंत श्रेणी दूर तक चली गई है। घने झुरमुट के कारण आलोक प्रवेश का हरेक रास्ता बंद है। इस तरह पल्लवों का आनंद समुद्र कोस-दर-कोस-- सैकड़ों-हजारों कोस में फैला हुआ है, वायु की झकझोर झोंके से बह रही हैं। नीचे घना अंधेरा, माध्याह्न के समय भी प्रकाश नहीं आता-- भयानक दृश्य! उत्सव जंगल के भीतर मनुष्य प्रवेश तक नहीं कर सकते, केवल पत्ते की मर्मर ध्वनि और पशु-पक्षियों की आवाज के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नहीं सुनाई पड़ता। एक तो यह अति विस्तृत, अगम्य, अंधकारमय जंगल, उस पर रात्रि का समय! पतंग उस जंगल में रहते हैं लेकिन कोई चूं तक नहीं बोलता है। शब्दमयी पृथ्वी की निस्तब्धता का अनुमान किया नहीं जा सकता है; लेकिन उस अनंत शून्य जंगल के सूची-भेद्य अंधकार का अनुभव किया जा सकता है। सहसा इस रात के समय की भयानक निस्तब्धता को भेदकर ध्वनि आई-- मेरा मनोरथ क्या सिद्ध न होगा ।..... इस तरह तीन बार वह निस्तब्ध-अंधकार अलोडित हुआ- तुम्हारा क्या प्रण है? उत्तर मिला- मेरा प्रण ही जीवन-सर्वस्व है? प्रति शब्द हुआ- जीवन तो तुच्छ है, सब इसका त्याग कर सकते हैं! तब और क्या है..और क्या होना चाहिए? उत्तर मिला- भक्ति! बंगाब्द सन् 1176 के गरमी के महीने में एक दिन, पदचिन्ह नामक एक गांव में बड़ी भयानक गरमी थी। गांव घरों से भरा हुआ था, लेकिन मनुष्य दिखाई नहीं देते थे। बाजार में कतार-पर-कतार दुकानें विस्तृत बाजार में लंबी-चौड़ी सड़कें, गलियों में सैकड़ों मिट्टी के पवित्र गृह, बीच-बीच में ऊंची-नीची अट्टालिकाएं थीं। आज सब नीरव हैं; दुकानदार कहां भागे हुए हैं, कोई पता नहीं। बाजार का दिन है, लेकिन बाजार लगा नहीं है, शून्य है। भिक्षा का दिन है, लेकिन भिक्षुक बाहर दिखाई नहीं पड़ते। जुलाहे अपने करघे बंद कर घर में पड़े रो रहे हैं। व्यवसायी अपना रोजगार भूलकर बच्चों को गोद में लेकर विह्वल हैं। दाताओं ने दान बंद कर दिया है, अध्यापकों ने पाठशाला बंद कर दी है, शायद बच्चे भी साहसपूर्वक रोते नहीं है। राजपथ पर भीड़ नहीं दिखाई देती, सरोवर पर स्नानार्थियों की भीड़ नहीं है, गृह-द्वार पर मनुष्य दिखाई नहीं पड़ते हैं, वृक्षों पर पक्षी दिखाई नहीं पड़ते, चरनेवाली गौओं के दर्शन मिलते नहीं हैं, केवल श्मशान में स्यार और कुत्ते हैं, एक बहुत बड़ी आट्टालिका है, उसकी ऊंची

चहारदीवारी और गगन-चुंबी गुंबद दूर से दिखाई पड़ते हैं। वह अट्टालिका उस गृह-जंगल में शैल-शिखर-सी दिखाई पड़ती है। उसकी शोभा का क्या कहना है- लेकिन उसके दरवाजे बंद है, गृह मनुष्य-समागम से शून्य है, वायु-प्रवेश में भी असुविधा है। उस घर के अंदर दिन-दोपहर के समय अंधेरा है; अंधकार में रात के समय एक कमरे में, फू ले हुए दो पुष्पों की तरह एक दंपति बैठे हुए चिंतामगन् हैं। उनके सामने अकाल का भीषण रूप है। 1174 में फसल अच्छी नहीं हुई, अत: ग्यारह सौ पचहत्तर में अकाल आ पड़ा- भारतवासियों पर संकट आया। लेकिन इस पर भी शासकों ने पैसा-पैसा, कौड़ी-कौड़ी वसूल कर ली। दरिद्र जनता ने कौड़ी-कौड़ी करके मालगुजारी अदा कर दिन में एक ही बार भोजन किया। ग्यारह सौ पचहत्तर बंगाब्द की बरसात में अच्छी वर्षा हुई। लोगों ने समझा कि शायद देवता प्रसन्न हुए। आनंद में फिर मठ-मंदिरों में गाना-बजाना शुरू हुआ, किसान की स्त्री ने अपने पति से चांदी के पाजेब के लिए फिर तकाजा शुरू किया। लेकिन अकस्मात आश्विन मास में फिर देवता विमुख हो गए। क्वार-कार्तिक में एक बूंद भी बरसात न हुई। खेतों में धान के पौधे सूखकर खंखड़ हो गए। जिसके दो-एक बीघे में धान हुआ भी तो राजा ने अपनी सेना के लिए उसे खरीद लिया, जनता भोजन पा न सकी। पहले एक संध्या को उपवास हुआ, फिर एक समय भी आधा पेट भोजन उन मिलने लगा, इसका बाद दो-दो संध्या उपवास होने लगा। चैत में जो कुछ फसल हुई वह किसी के एक ग्रास भर को भी न हुई। लेकिन मालगुजारी के अफसर मुहम्मद रजा खां ने मन में सोचा कि यही समय है, मेरे तपने का। एकदम उसने दश प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। बंगाल में घर-घर कोहराम मच गया। पहले लोगों ने भीख मांगना शुरू किया, इसके बाद कौन भिक्षा देता है? उपवास शुरू हो गया। फिर जनता रोगाक्रांत होने लगी। गो, बैल, हल बेचे गए, बीज के लिए संचित अन्न खा गए, घर-बार बेचा, खेती-बारी बेची। इसके बाद लोगों ने लड़कियां बेचना शुरू किया, फिर लड़के बेचे जाने लगे, इसको बाद गृहलक्ष्मियों का विक्रय प्रारंभ हुआ। लेकिन इसके बाद, लड़की, लड़के औरतें कौन खरीदता? बेचना सब चाहते थे लेकिन खरीददार कोई नहीं। खाद्य के अभाव में लोग पेड़ों के पत्ते खाने लगे, घास खाना शुरू किया, नरम टहनियां खाने लगे। छोटी जाति की जनता और जंगली लोग कुत्ते, बिल्ली, चूहे खाने लगे। बहुतेरे लोग भागे, वे लोग विदेश में जाकर अनाहार से मरे। जो नही भागे, वे अखाद्य खाकर, उपवास और रोग से जर्जर हो मरने लगे। महेंद्र चले गए। कल्याणी अकेली बालिका को लिए हुए प्राय: जनशून्य स्थान में, घर के अंदर अंधकार में

पड़ी चारों तरफ देखती रही। उसके मन में भय का संचार हो रहा था। कहीं कोई नहीं, मनुष्य मात्र का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता है केवल कुत्तों और स्यारों की आवाज सुनाई पड़ जाती है। सोचने लगी-क्यों उन्हें जाने दिया? न होता, थोड़ी और भूख-प्यास बर्दाश्त करती। फिर सोचा--चारों तरफ के दरवाजे बंद कर दूं। लेकिन एक भी दरवाजे में किवाड़ दिखाई न दिया। इस तरह चारों तरफ देखते-देखते सहसा उसे सामने के दरवाजे पर एक छाया दिखाई दी-- मनुष्याकृति जैसा, कंकाल मात्र और कोयले की तरह काला, नगन्, विकटाकार मनुष्य जैसा कोई आकार दरवाजे पर खड़ा था। कुछ देर बाद छाया ने मानो अपना एक हाथ उठाया और हाथों की लंबी सूखी उंगलियों से संकेत कर किसी को अपने पास बुलाया। कल्याणी का प्राण सूख गया। इसके बाद वैसी ही एक छाया और- सूखी-काली, दीर्घाकार, नगन्- पहली छाया के पास आकर खड़ी हो गई। इसके बाद ही एक और एक और... इस तरह कितने ही पिशाच आकर घर के अंदर प्रवेश करने लगे। वहां का एकांत श्मशान की तरह भयंकर दिखाई देने लगा। वह सब प्रेत जैसी मूर्तियां कल्याणी और उसकी कन्या को घेरकर खड़ी हो गई- देखकर कल्याणी भय से मूर्छित हो गई। काले नरकंकालों जैसे पुरुष कल्याणी और उसकी कन्या को उठाकर बाहर निकले और बस्ती पार कर एक जंगल में घुस गए। कुछ देर बाद महेंद्र उस हंडिया में दूध लिए हुए वहां आए। उन्होंने देखा कि वहां कोई नहीं है। इधर-उधर खोजा; पहले कन्या का नाम और फिर स्त्री का नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगे। लेकिन न तो कोई उत्तर मिला और न कुछ पता ही लगा। जिस वन में डाकू कल्याणी को लेकर घुसे, वह वन बड़ा ही मनोहर था। यहां रोशनी नहीं कि शोभा दिखाई दे, ऐसी आंखें भी नहीं कि दरिद्र के हृदय के सौंदर्य की तरह उस वन का सौंदर्य भी देख सकें। देश में आहार द्रव्य रहे या न रहे- वन में फूल है; फूलों की सुगंध से मानो उस अंधकार में प्रकाश हो रहा है। बीच की साफ-सुकोमल और पुष्पावृत जमीन पर डाकुओं ने कल्याणी और उसकी कन्या को उतारा और सब उन्हें घेरकर बैठ गए। इसके बाद उन सब में यह बहस चली कि इन लोगों का क्या किया जाए? कल्याणी को जो कुछ गहने थे, उन्हें डाकुओं ने पहले ही हस्तगत कर लिया। एक दल उसके हिस्से-बखरे में व्यस्त हो गया। गहनों के बंट जाने पर एक डाकू ने कहा-हम लोग सोना-चांदी लेकर क्या करेंगे? एक गहना लेकर कोई मुझे भोजन दे, भूख से प्राण जाते हैं- आज सबेरे केवल पत्ते खाए हैं। एक के यह करने पर सभी इसी तरह हल्ला मचाने लगे- भारत दो, हम भूख से मर रहे हैं, सोना-चांदी नहीं चाहते।.. दलपति उन्हें शांत करने लगा,

लेकिन कौन सुनता है; क्रमश: ऊंचे स्वर में बातें शुरू हुई, फिर गाली-गलौच शुरू हुई, मार-पीट की भी तैयारी होने लगी। जिसे-जिसे हिस्से में गहने मिले थे, वे लोग अपने-अपने हिस्से के गहने खींच-खीचकर दलपति के शरीर पर मारने लगे। दलपति ने भी दो-एक को मारा। इस पर सब मिलकर आक्रमण कर दलपति पर आघात करने लगे। दलपति अनाहार से कमजोर और अधमरा तो आप ही था, दो-चार आघार में ही गिरकर मर गया। उन भूखे, पीडित, उत्तेजित और दयाशून्य डाकुओं में से एक ने कहा--स्यार का मांस खा चुके हैं, भूख से प्राण जा रहा है, आओ भाई आज इसी साले को खा लें। इस पर सबने मिलकर जयकाली कहकर जयघोष किया--जय काली! आज नर-मांस खाएंगे। यह कहकर वह सब नरकंकाल रूपधारी खिलखिलाकर हंस पड़े और तालियां बजाते हुए नाचने लगे। एक दलपति के शरीर को भूनने के लिए आग जलाने का इंतजाम करने लगा। लता-डालियां और पत्ते संग्रह कर, उसने चकमक पत्थर द्वारा आग पैदा कर उसे धधकाया; धधक कर आग जल उठी। आग की लपट के पास के आम, खजूर, पनस, नींबू आदि के वृक्षों के कोमल हरे पत्ते चमकने लगे। कहीं पत्ते जलने लगे, कहीं घास पर रोशनी से हरियाली हुई तो कहीं अंधेरा और गाढ़ा हो गया। आग जल जाने पर कुछ लोग दलपति के कंकाल को आग में फेंकने के लिए घसीटकर लाने लगे। इसी समय एक बोल उठा-ठहरो, ठहरो! अगर यह मांस ही खाकर आज भूख मिटानी है, तो इस सूखे नरकंकाल को न भूनकर, आओ इस कोमल लड़की को ही भूनकर खाया जाए एक बोला-जो हो, भैया ! एक को भूनो ! हम तो भूख से मर रहे हैं। इस पर सबने लोलुप दृष्टि से उधर देखा, जिधर अपनी कन्या को लिए हुए कल्याणी पड़ी थी। उस सबने देखा कि वह स्थान सूना था, न कन्या थी और न माता ही। डाकुओं के आपसी विवाद और मारपीट के समय सुयोग पाकर कल्याणी गोद में बच्ची को चिपकाए वन के भीतर भाग गई। शिकार को भागा देखकर वह प्रेत-दल मार-मार करता हुआ चारों तरफ उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। अवस्था विशेष में मनुष्य पशुमात्र रह जाता है। रोग को भी अवसर मिला- ज्वर, हैजा, क्षय, चेचकफैल पड़ा। विशेषत: चेचक का बड़ा प्रसार हुआ। घर-घर लोग महामारी से मरने लगे। कौन किसे जल देता है- कौन किसे छूता? कोई किसी की चिकित्सा नहीं करता, कोई किसी को नहीं देखता था। मर जाने पर शव कोई उठाकर फेंकता नहीं था। अति रमणीय गृह-स्थान आप ही सड़कर बदबू करने लगे। जिस घर में एक बार चेचक हुआ, रोगी को छोड़कर घरवाले भाग गए। महेंद्र सिंह पदचिन्ह के बड़े धनी व्यक्ति हैं--

लेकिन आज धनी-गरीब सब बराबर हैं। इस दु:खपूर्ण अकाल के समय रोगी होकर उसके आत्मीय-स्वजन, दासी-दास सभी चले गए हैं। कोई मर गया, कोई भाग गया। उस वृहत परिवार में उनकी स्त्री, वे और गोद में एक शिशु-कन्या मात्र रह गई है। इन्हीं लोगों की बात कह रहा हूं। उनकी भार्या कल्याणी ने चिंता छोड़कर गोशाला में जाकर गाय दुही। इसके बाद दूध गर्म कर कन्या को पिलाया और गऊ को घास खाने के लिए डाल दिया। वह लौटकर जब काई तो महेंद्र ने कहा-इस तरह कितने दिन चलेगा? कल्याणी बोली-- ज्यादा दिन नहीं! जितने दिन चले, जितने दिन मैं चला पाती हूं, चला रही हूं। इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना। महेंद्र- अगर शहर ही चलना है तो तुम्हें ही इतनी तकलीफ क्यों दी जाय? चलो न, अभी चलें! इसके बाद दोनों अनेक तर्क-वितर्क हुए। कल्याणी- शहर में जाने से क्या विशेष उपकार होगा? महेंद्र- वह स्थान भी शायद ऐसे ही जन शून्य, प्राणरक्षा के उपाय से रहित है कल्याणी-मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ता जाने से प्राणरक्षा हो सकेगी। इस स्थान से तो त्याग देना हर तरह से उचित है? महेंद्र ने कहा-यह घर बहुत दिनों से वंशानुक्रम से संचित धन से परिपूर्ण है, इन्हें तो चोर लूट ले जाएंगे। कल्याणी-यदि वह लोग लूटने के लिए आएं तो क्या हम दो जन रक्षा कर सकते है? प्राण ही न रहा तो धन कौन भोगेगा? चलो, अभी से ही सब बंद-संद करके चल चलें। अगर जिंदा रह गए तो फिर आकर भोग करेंगे। महेंद्र ने पूछा- क्या तुम राह चल सकोगी? कहार सब मर ही गए हैं। बैल हैं तो गाड़ी नहीं है और गाड़ी है तो बैल नहीं है। कल्याणी -तुम चिंता न करो, मैं पैदल चलूंगी। कल्याणी ने मन-ही-मन निश्चय किया- न होगा, राह में मरकर गिर पड़ूंगी; यह दोनों जन तो बचे रहेंगे। दूसरे दिन सबेरे, साथ में कुछ धन लेकर घर-द्वार में ताला बंद कर, गायों को मुक्त कर और कन्या को गोद में लेकर दोनों जन राजधानी के लिए चल पड़े। यात्रा के समय महेंद्र ने कहा- राह बड़ी भयानक है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे छिपे हैं; खाली हाथ जाना उचित नहीं है। यह कहकर महेंद्र ने फिर घर में वापस जाकर बंदूक, गोली बारूद साथ में ले ली। यह देखकर कल्याणी ने कहा-अगर अस्त्र की बात याद की है तो जरा लड़की को गोद में सम्हाल लो, मैं भी हथियार ले लूं यह कहकर कल्याणी ने लड़की महेंद्र की गोद में देकर घर के भीतर प्रवेश किया। महेंद्र ने पूछा-तुम कौन-सा हथियार लोगी कल्याणी ने घर में जाकर विष की एक डिबिया अपने कपड़ों के अंदर छिपा ली। जेठ का महीना है। भयानक गर्मी से पृथ्वी अगिन्मय हो रही है; हवा में आग की लपट दौड़ रही है, आकाश गरम तवे की तरह जल

रहा है, राह की धूल आग की चिनगारी बन गई है। कल्याणी के शरीर से पसीने की धार बहने लगी; कभी पीपल के नीचे, कभी बड़ के नीचे, कभी खजूर के नीचे छाया देखकर तिलमिलाती हुई बैठ जाती है। सूखे हुए तालाबों का कीचड़ से सना मैला जल पीकर वे लोग राह चलने लगे। लड़की महेंद्र की गोद में है- समय समय पर वे उसे पंखा हांक देते हैं। कभी घने हरे पत्तों से दाएं, सुगंधित फूलों वाले वृक्ष से लिपटी हुई लता की छाया में दोनों जन बैठकर विराम करते हैं। महेंद्र ने कल्याणी को इतना सहनशील देखकर आश्चर्य किया। पास के ही एक जलाशय से वस्त्र को जल से तर कर महेंद्र ने उससे कन्या और पत्नी का जलता माथा और मुंह धोकर कुछ शांत किया। इससे कल्याणी कुछ आश्वस्त अवश्य हुई, लेकिन दोनों ही भूख से बड़े विह्वल हुए। वे लोग तो उसे भी सहने लगे, लेकिन बालिका की भूख-प्यास उनसे बर्दाश्त न हुई, अत: वहां अधिक देर न ठहरकर वे लोग फिर चल पड़े। उस आग के सागर को पार कर संध्या से पहले वे एक बस्ती में पहुंचे। महेंद्र के मन में बड़ी आशा थी कि बस्ती में पहुंचकर वे अपनी पत्नी और कन्या की शीतल जल से तृप्त कर सकेंगे और प्राणरक्षा के निमित्त अपने मुंह में भी कुछ आहार डाल सकेंगे। लेकिन कहां? बसती में तो एक भी मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता। बड़े-बड़े घर सूने पड़े हुए हैं, सारे आदमी वहां से भाग गए हैं। इधर-उधर देखकर एक घर के भीतर महेंद्र ने स्त्री-कन्या को बैठा दिया। बाहर आकर उन्होंने जोरों से पुकारना शुरू किया, लेकिन उन्हें कोई भी उत्तर सुनाई न पड़ा। तब महेंद्र ने कल्याणी से कहा-तुम जरा साहसपूर्वक अकेली रहो; देखूं शायद कहीं कोई गाय दिखाई दे जाए। भगवान श्रीकृष्ण दया कर दें तो दूध ले आएं। यह कहकर महेंद्र एक मिट्टी का बरतन हाथ में लेकर निकल पड़े। बहुतेरे बरतन वहीं पड़े हुए थे।

आनन्दमठ भाग-2

जंगल के भीतर घनघोर अंधकार है। कल्याणी को उधर राह मिलना मुश्किल हो गया। वृक्ष-लताओं के झुरमुट के कारण एक तो राह कठिन, दूसरे रात का घना अंधेरा। कांटों से विंधती हुई कल्याणी उन आदमखोरों से बचने के लिए भागी जा रही थी। बेचारी कोमल लड़की को भी कांटे लग रहे थे। अबोध बालिका गोद में चीखकर रोने लगी; उसका रोना सुनकर दस्युदल और चीत्कार करने लगा। फिर भी, कल्याणी पागलों की तरह जंगल में तीर की तरह घुसती भागी जा रही थी। थोड़ी ही देर में चंद्रोदय हुआ। अब तक कल्याणी के मन में भरोसा था कि अंधेरे में नर-पिशाच उसे देख न सकेंगे, कुछ देर परेशान होकर पीछा छोड़कर लौट जाएंगे, लेकिन अब चांद का प्रकाश फैलने से वह अधीर हो उठी। चन्द्रमा ने आकाश में ऊंचे उठकर वन पर अपना रुपहला आवरण पैला दिया, जंगल का भीतरी हिस्सा अंधेरे में चांदनी से चमक उठा- अंधकार में भी एक तरह की उ”वलता फैल गई- चांदनी वन के भीतर छिद्रों से घुसकर आंखमिचौनी करने लगी। चंद्रमा जैसे-जैसे ऊपर उठने लगा, वैसे-वैसे प्रकाश फैलने लगा जंग को अंधकार अपने में समेटने लगा। कल्याणी पुत्री को गोद में लिए हुए और गहन वन में जाकर छिपने लगी। उजाला पाकर दस्युदल और अधिक शोर मचाते हुए दौड़-धूप कर खोज करने लगे। कन्या भी शोर सुनकर और जोर से चिल्लाने लगी। अब कल्याणी भी थककर चूर हो गई थी; वह भागना छोड़कर वटवृक्ष के नीचे साफ जगह देखकर कोमल पत्तियों पर बैठ गई और भगवान को बुलाने लगी-कहां हो तुम? जिनकी मैं नित्य पूजा करती थी, नित्य नमस्कार करती थी, जिनके एकमात्र भरोसे पर इस जंगल में घुसने का साहस कर सकी.... ..कहां हो, हे मधुसूदन! इस समय भय और भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख-प्यास से थकावट से कल्याणी धीरे अचेत होने लगी; लेकिन आंतरिक चैतन्य से उसने सुना, अंतरिक्ष में स्वर्गीय गीत हो रहा है-

हरे मुरारे! मधुकैटभारे! गोपाल, गोविंद मुकुंद प्यारे! हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

कल्याणी बचपन से पुराणों का वर्णन सुनती आती थी कि देवर्षि नारद हाथों में वीणा लिए हुए आकाश पथ से भुवन-भ्रमण किया करते हैं- उसके हृदय में वही कल्पना जागरित होने

लगी। मन-ही-मन वह देखने लगी- शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन महामति महामुनि वीणा लिए हुए, चांदनी से चमकते आकाश की राह पर गाते आ रहे हैं।

हरे मुरारे! मधुकैटभारे!....

क्रमश: गीत निकट आता हुआ, और भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा-

हरे मुरारे! मधुकैटभारे!....

क्रमश: और भी निकट, और भी स्पष्ट-

हरे मुरारे! मधुकैटभारे!....

अंत में कल्याणी के मस्तक पर, वनस्थली में प्रतिध्वनित होता हुआ गीत होने लगा-

हरे मुरारे! मधुकैटभारे!....

कल्याणी ने अपनी आंखें खोलीं। धुंधले अंधेरे की चांदी में उसने देखा- सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन ऋषिमूर्ति खड़ी है। विकृत मस्तिष्क और अर्धचेतन अवस्था में कल्याणी ने मन में सोचा-- प्रणाम करूं, लेकिन सिर झुकाने से पहले ही वह फिर अचेत हो गयी और गिर पड़ी।

रात काफी बीत चुकी है। चंद्रमा माथे के ऊपर है। पूर्ण चंद्र नहीं है, इसलिए चांदनी भी चटकीली नहीं- फीकी है। जंगल के बहुत बड़े हिस्से पर अंधकार में धुंधली रोशनी पड़ रही है। इस प्रकाश में मठ के इस पार से दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। मठ मानो एकदम जनशून्य है- देखने से यही मालूम होता है। इस मठ के समीप से मुर्शिदाबाद और कलकत्ते को राह जाती है। राह के किनारे ही एक छोटी पहाड़ी है, जिस पर आम के अनेक पेड़ है। वृक्षों की चोटी चांदनी से चमकती हुई कांप रही है, वृक्षों के नीचे पत्थर पर पड़नेवाली छाया भी कांप रही है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर न जाने क्या सुनने लगे। नहीं कहा जा सकता कि वे क्या सुन रहे थे। इस अनंत जंगल में पूर्ण शांति थी- कहीं ऐसे

ही पत्तों की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। पहाड़ की तराई में एक जगह भयानक जंगल है। ऊपर पहाड़ नीचे जंगल बीच में वह राह है। नहीं कह सकते कि उधर कैसी आवाज हुई जिसे सुनकर ब्रह्मचारी उसी ओर चल पड़े। उन्होंने भयानक जंगल में प्रवेश कर देखा कि वहां एक घने स्थान में वृक्षों की छाया में बहुतेरे आदमी बैठे हैं। वे सब मनुष्य लंबे, काले, और सशस्त्र थे पेड़ों की छाया को भेदकर आनेवाली चांदनी उनके शस्त्रों को चमका रही थी। ऐसे ही दो सौ आदमी बैठे हैं और सब शांत, चुप हैं। ब्रह्मचारी उनके बीच में जाकर खड़े हो गए और उन्होंने कुछ इशारा कर दिया, जिससे कोई भी उठकर खड़ा न हुआ। इसके बाद वह तपस्वी महात्मा एक तरफ से लोगों को चेहरा गौर से देखते हुए आगे बढ़ने लगे, जैसे किसी को खोजते हों। खोजते-खोजते अन्त में वह पुरुष मिला और ब्रह्मचारी के उसका अंग स्पर्श कर इशारा करते ही वह उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे साथ लेकर दूर आड़ में चले गए। वह पुरुष युवक और बलिष्ठ था- लंबे घुंघराले बाल कंधे पर लहरा रहे थे। पुरुष अतीव सुंदर था। गैरिक वस्त्रधारी तथा चंदनचर्चित अंगवाले ब्रह्मचारी ने उस पुरुष से कहा- भवानंद! महेंद्र सिंह की कुछ खबर मिली है?

इस पर भवानंद ने कहा\स्-आज सबेरे महेंद्रसिंह अपनी पत्नी और कन्या के साथ गृह त्यागकर बाहर निकलें हैं-बस्ती में.....

इतना सुनते ही ब्रह्मचारी ने बात काटकर कहा-बस्ती में जो घटना हुई है, मैं जानता हूं। किसने ऐसा किया?

भवानंद-गांव के ही किसान लोग थे। इस समय तो गांवों के किसान भी पेट की ज्वाला से डाकू हो गए हैं। आजकल कौन डाकू नहीं है? हम लोगों ने भी आज लूट की है- दारोगा साहब के लिए दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवों को भोग लगा दिया है।

ब्रह्मचारी ने कहा-चोरों के हाथ से तो हमने स्त्री-कन्या का उद्धार कर लिया है। इस समय

उन्हें मठ में बैठा आया हूं। अब यह भार तुम्हारे ऊपर है कि महेंद्र को खोजकर उनकी स्त्री-कन्या उनके हवाले कर दो। यहां जीवानंद के रहने से काम हो जाएगा।

भवानंद ने स्वीकार कर लिया। तब ब्रह्मचारी दूसरी जगह चले गए।

इसी वन में एक बहुत विस्तृत भूमि पर ठोस पत्थरों से मिर्मित एक बहुत बड़ा मठ है। पुरातत्त्ववेत्ता उसे देखकर कह सकते हैं कि पूर्वकाल में यह बौद्धों का विहार था- इसके बाद हिंदुओं का मठ हो गया है। दो खंडों में अट्टालिकाएं बनी है, उसमें अनेक देव-मंदिर और सामने नाटयमंदिर है। वह समूचा मठ चहारदीवारी से घिरा हुआ है और बाहरी हिस्सा ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्षों से इस तरह आच्छादित है कि दिन में समीप जाकर भी कोई यह नहीं जान सकता कि यहां इतना बड़ा मठ है। यों तो प्राचीन होने के कारण मठ की दीवारें अनेक स्थानों से टूट-फूट गई हैं, लेकिन दिन में देखने ने से साफ पता लगेगा कि अभी हाल ही में उसे बनाया गया है। देखने से तो यही जान पड़ेगा कि इस दुर्भेद्य वन के अंदर कोई मनुष्य रहता न होगा। उस अट्टालिका की एक कोठरी में लकड़ी का बहुत बड़ा कुन्दा जल रहा था। आंख खुलने पर कल्याणी ने देखा कि सामने ही वह ऋषि महात्मा बैठे हैं। कल्याणी बड़े आश्चर्य से चारों तरफ देखने लगी। अभी उसकी स्मृति पूरी तरह जागी न थी। यह देखकर महापुरुष ने कहा- बेटी! यह देवताओं का मंदिर है, डरना नहीं। थोड़ा दूध है, उसे पियो; फिर तुमसे बातें होंगी।

पहले तो कल्याणी कुछ समझ न सकी, लेकिन धीरे-धीरे उसके हृदय में जब धीरज हुआ तो उसने उठकर अपने गले में आंचल डालकर, जमीन से मस्तक लगाकर प्रणाम किया। महात्माजी ने सुमंगल आशीर्वाद देकर दूसरे कमरे से एक सुगंधित मिट्टी का बरतन लाकर उसमें दूध गरम किया। दूध के गरम हो जने पर उसे कल्याणी को देकर बोले- बेटी! दूध कन्या को भी पिलाओ, स्वयं भी पियो, उसके बाद बातें करना। कल्याणी संतुष्ट हृदय से कन्या को दूध पिलाने लगी। इसके बाद उस महात्मा ने कहा- मैं जब तक न आऊं, कोई चिंता न करना। यह कहकर कमरे के बाहर चले गए। कुछ देर बाद उन्होंने लौटकर देखा

कि कल्याणी ने कन्या को तो दूध पिला दिया है, लेकिन स्वयं कुछ नहीं पिया। जो दूध रखा हुआ था, उसमें से बहुत थोड़ा खर्च हुआ था। इस पर महात्मा ने कहा- बेटी! तुमने दूध नहीं पिया? मैं फिर बाहर जाता हूं; जब तक तुम दूध न पियोगी, मैं वापस न आऊंगा।

वह ऋषितुल्य महात्मा यह कहकर बाहर जा रहे थे; इसी समय कल्याणी फिर प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ी हो गई।

महात्मा ने पूछा-क्या कहना चाहती हो?

कल्याणी ने हाथ जोड़े हुए कहा- मुझे दूध पीने की आज्ञा न दें। उसमें एक बाधा है, मैं पी न सकूंगी।.....

इस पर महात्मा ने दु:खी हृदय से कहा- क्या बाधा है? मैं ब्रह्मचारी हूं, तुम मेरी कन्या के समान हो; ऐसी कौन बात हो सकती है जो मुझसे कह न सको? मैं जब तुम्हें वन से उठाकर यहां ले आया, तो तुम अत्यंत भूख प्यास से अवसन्न थी, तुम यदि दूध न पियोगी तो कैसे बचोगी?

इस पर कल्याणी ने भरी आंखें और भरे गले से कहा- आप देवता है, आपसे अवश्य निवेदन करूंगी - अभी तक मेरे स्वामी ने कुछ नहीं खाया है, उनसे मुलाकात हुए बिना या संवाद मिले बिना मैं भोजन न कर सकूंगी। मैं कैसे खाऊंगी..

ब्रह्मचारी ने पूछा- तुम्हारे पतिदेव कहां हैं?

कल्याणी बोली- यह मुझे मालूम नहीं- दूध की खोज में उनके बाहर निकलने पर ही डाकू मुझे उठा ले गए इस पर ब्रह्मचारी ने एक-एक बात पूछकर कल्याणी से उसके पति का सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणी ने पति का नाम नहीं बताया, बता भी नहीं सकती थी, किंतु अन्याय परिचयों से ब्रह्मचारी समझ गए। उन्होंने पूछा- तुम्हीं महेंद्र की पत्नी हो? इसका कोई उत्तर न देकर कल्याणी सिर झुका कर, जलती हुई आग में लकड़ी लगाने लगी। ब्रह्मचारी ने समझकर कहा- तुम मेरी बात मानो, मैं तुम्हारे पति की खोज करता हूं। लेकिन जब तक दूध न पिओगी, मैं न जाऊंगा?

कल्याणी पूछा- यहां थोड़ा जल मिलेगा?

ब्रह्मचारी ने जल का कलश दिखा दिया। कल्याणी ने अंजलि रोपी, ब्रह्मचारी ने जल डाल दिया। कल्याणी ने उस जल की अंजलि को महात्मा के चरणों के पास ले जाकर कहा- इसमें कृपा कर पदरेणु दे दें। महात्मा के अंगूठे द्वारा छू देने पर कल्याणी ने उसे पीकर कहा- मैंने अमृतपान कर लिया है। अब और कुछ खाने-पीने को न कहिए। जब तक पतिदेव का पता न लगेगा मैं कुछ न खाऊंगी।

इस पर ब्रह्मचारी ने संतुष्ट होकर कहा- तुम इसी देवस्थान में रहो। मैं तुम्हारे पति की खोज में जाता हूं।

बस्ती में बैठे रहने और सोचते रहने का कोई प्रतिफल न होगा- यह सोचकर महेंद्र वहां से उठे। नगर में जाकर राजपुरुषों की सहायता से स्त्री-कन्या का पता लगवाएं- यह सोचकर महेंद्र उसी तरफ चले। कुछ दूर जाकर राह में उन्होंने देखा कि कितनी ही बैलगाडियों को घेरकर बहुतेरे सिपाही चले आ रहे हैं।

बंगला सन् 1173 में बंगाल प्रदेश अंगरेजों के शासनाधीन नहीं हुआ था। अंगरेज उस

समय बंगाल के दीवान ही थे। वे खजाने का रुपया वसूलते थे, लेकिन तब तक बंगालियों की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया न था। उस समय लगान की वसूली का भार अंगरेजों पर था, और कुल सम्पत्ति की रक्षा का भार पापिष्ट, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्य-कुलकलंक मीरजाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा में ही अक्षम था, तो बंगाल प्रदेश की रक्षा कैसे कर सकता था? मीरजाफर सिर्फ अफीम पीता था और सोता था, अंगरेज ही अपने जिम्मे का सारा कार्य करते थे। बंगाली रोते थे और कंगाल हुए जाते थे।

अत: बंगाल का कर अंगरेजों को प्राप्य था, लेकिन शासन का भार नवाब पर था। जहां-जहां अंगरेज अपने प्राप्य कर की स्वयं अदायगी कराते थे, वहां-वहां उन्होंने अपनी तरफ से कलेक्टर नियुक्त कर दिए थे। लेकिन मालगुजारी प्राप्त होने पर कलकत्ते जाती थी। जनता भूख से चाहे मर जाए, लेकिन मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। फिर भी मालगुजारी पूरी तरह वसूल नहीं हुई थी- कारण, माता-वसुमती के बिना धन-प्रसव किए, जनता अपने पास के कैसे गढ़कर दे सकती थी? जो हो, जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसे गाडियों पर लादकर सिपाहियों के पहरे में कलकत्ते भेजा जा रहा था- धन कंपनी के खजाने में जमा होता। आजकल डाकुओं का उत्पात बहुत बढ़ गया है, इसीलिए पचास सशस्त्र सिपाही गाड़ी के आगे-पीछे संगीन खड़ी किए, कतार में चल रहे थे : उनका अध्यक्ष एक गोरा था जो सबसे पीछे घोड़े पर था। गरमी की भयानकता के कारण सिपाही दिन में न चलकर रात को सफर करते थे। चलते-चलते उन गाडियों और सिपाहियों के कारण महेंद्र की राह रुक गई। इस तरह राह रुकी होने के कारण थोड़ी देर के लिए महेंद्र सड़क के किनारे खड़े हो गए। फिर भी सिपाहियों के शरीर से धक्का लग सकता था, और झगड़ा बचाने के ख्याल से वे कुछ हटकर जंगल के किनारे खड़े हो गए।

इसी समय एक सिपाही बोला--यह देखो, एक डाकू भागता है। महेंद्र के हाथ में बंदूक देखकर उसका विश्वास दृढ़ हो गया। वह दौड़कर पहुंचा और एकाएक महेंद्र का गला पकड़कर साले चोर! कहकर उन्हें एक घूंसा जमाया और बंदूक छीन ली। खाली हाथ महेंद्र ने केवल घूंसे का जवाब घूंसे से दिया। महेंद्र को अचानक इस बर्ताव पर क्रोध आ गया था, यह कहना ही व्यर्थ है! घूंसा खाकर सिपाही चक्कर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो

गया। इस पर अन्य चार सिपाहियों ने आकर महेंद्र को पकड़ लिया और उन्हें उस गोरे सेनापति के पास ले गए। अभियोग लगाया कि इसने एक सिपाही का खून किया है। गोरा साहब पाइप से तमाखू पी रहा था, नशे के झोंके में बोला--साले को पकड़कर शादी कर लो। सिपाही हक्का-बक्का हो रहे थे कि बंदूकधारी डाकू से सिपाही कैसे शादी कर लें? लेकिन नशा उतरने पर साहब का मत बदल सकता है कि शादी कैसे होगी- यही विचार कर सिपाहियों ने एक रस्सी लेकर महेंद्र के हाथ-पैर बांध दिए और गाड़ी पर डाल दिया। महेंद्र ने सोचा कि इतने सिपाहियों के रहते जो लगाना व्यर्थ है, इसका कोई फल न होगा; दूसरे स्त्री-कन्या के गायब होने के कारण महेंद्र बहुत दु:खी और निराश थे; सोचा-- अच्छा है, मर जाना ही अच्छा है! सिपाहियों ने उन्हें गाड़ी के बल्ले से अच्छी तरह बांध दिया और इसके बाद धीर-गंभीर चाल से वे लोग फिर पहले की तरह चलने लगे।

आनन्दमठ भाग-3

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानंद धीरे-धीरे हरिकीर्त्तन करते हुए उस बस्ती की तरफ चले, जहां महेंद्र का कन्या-पत्नी से वियोग हुआ था। उन्होंने विवेचन किया कि महेंद्र का पता वहीं से लगना संभव है।

उस समय अंग्रेजों की बनवायी हुई आधुनिक राहें न थी। किसी भी नगर से कलकत्ते जाने के लिए मुगल-सम्राटों की बनायी राह से ही जाना पड़ता था। महेंद्र भी पदचिह्न से नगर जाने के लिए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। भवानंद ताल-पहाड़ से जिस बस्ती की तरफ आगे बढ़े, वह भी दक्षिण से उत्तर पड़ती थी। जाते-जाते उनका भी उन धन-रक्षक सिपाहियों से साक्षात हो गया। भवानंद भी सिपाहियों की बगल से निकले। एक तो सिपाहियों का विश्वास था कि इस खजाने को लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करेंगे, उस पर राह में एक डाकू- महेंद्र को गिरफ्तार कर चुके थे, अत: भवानंद को भी राह में पाकर उनका विश्वास हो गया कि यह भी डाकू है। अतएव तुरंत उन सबने भवानंद को भी पकड़ लिया।

भवननंद ने मुस्करा कर कहा-ऐसा क्यों भाई?

सिपाही बोला-तुम साले डाकू हो!

भवानंद-देख तो रहे तो, गेरुआ कपड़ा पहने मैं ब्रह्मचारी हूं.... डाकू क्या मेरे जैसे होते हैं?

सिपाही-बहुतेरे साले ब्रह्मचारी-संन्यासी डकैत रहते हैं।

यह कहते हुए सिपाही भवानंद के गले पर धक्का दे खींच लाए। अंधकार में भवानंद की

आंखों से आग निकलने लगी, लेकिन उन्होंने और कुछ न कर विनीत भाव से कहा-हुजूर! आज्ञा करो, क्या करना होगा?

भवानंद की वाणी से संतुष्ट होकर सिपाही ने कहा-लो साले! सिर पर यह बोझ लादकर चलो। यह कहकर सिपाही ने भवानंद के सिर पर एक गठरी लाद दी। यह देख एक दूसरा सिपाही बोला-नहीं-नहीं भाग जाएगा। इस साले को भी वहां पहलेवाले की तरह बांधकर गाड़ी पर बैठा दो। इस पर भवानंद को और उत्कंठा हुई कि पहले किसे बांधा है, देखना चाहिए। यह विचार कर भवानंद ने गठरी फेंक दी और पहले सिपाही को एक थप्पड़ जमाया। अत: अब सिपाहियों ने उन्हें भी बांधकर गाड़ी पर महेंद्र की बगल में डाल दिया। भवानंद पहचान गए कि यही महेंद्रसिंह है।

सिपाही फिर निश्चिंत हो कोलाहल मचाते हुए आगे बढ़े। गाड़ी का पहिया घड़-घड़ शब्द करता हुआ घूमने लगा। भवानंद ने अतीव धीमे स्वर में, ताकि महेंद्र ही सुन सकें, कहा-महेंद्रसिंह! मैं तुम्हें पहचानता हूं। तुम्हारी सहायता करने के लिए ही यहां आया हूं। मैं कौन हूं यह भी तुम्हें सुनने की जरूरत नहीं। मैं जो कहता हूं, सावधान होकर वही करो! तुम अपने हाथ के बंधन गाड़ी के पहिये के ऊपर रखो।

महेंद्र विस्मित हुए, फिर भी उन्होंने बिना कहे-सुने भवानंद के मतानुसार कार्य किया-अंधकार में गाड़ी के चक्कों की तरफ जरा खिसककर उन्होंने अपने हाथ के बंधनों को पहिये के ऊपर लगाया। थोड़ी ही देर में उनके हाथ के बंधन कटकर खुल गए। इस तरह बंधन से मुक्त होकर वे चुपचाप गाड़ी पर लेट रहे। भवानंद ने भी उसी तरह अपने को बंधनों से मुक्त किया। दोनों ही चुपचाप लेटे रहे।

महेंद्र ने देखा दस्यु गाते-गाते रोने लगा। तब महेंद्र ने विस्मय से पूछा- तुमलोग कौन हो?

भवानंद ने उत्तर दिया -हमलोग संतान हैं।

महेंद्र -संतान क्या? किसकी संतान हैं?

भवानंद -माता की संतान!

महेंद्र -ठीक ! तो क्या संतान लोग चोरी-डकैती करके मां की पूजा करते हैं? यह कैसी मातृभक्ति?

भवानंद -हम लोग चोरी-डकैती नहीं करते....

महेंद्र -अभी तो गाड़ी लूटी है...?

भवानंद -यह क्या चोरी-डकैती है! किसके रुपये लुटे हैं?

महेंद्र -क्यों ? राजा के !

भवानंद -राजा के! वह क्यों इन रुपयों को लेगा- इन रुपयों पर उसका क्या अधिकार है?

महेंद्र -राजा का राज-भाग।

भवानंद-जो राजा राज्य प्रबंध न करे, जनता-जनार्दन की सेवा न करे, वह राजा कैसे हुआ?

महेंद्र-देखता हूं, तुम लोग किसी दिन फौजी की तोपों के मुंह पर उड़ जाओगे।

भवानंद -अनेक साले सिपाहियों को देख चुका हूं, अभी आज भी तो देखा है!

महेंद्र -अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे!

भवानंद -सब देख चुका हूं। एक बार से दो बार तो मनुष्य मर नहीं सकता।

महेंद्र -जान-बूझकर मरने की क्या जरूरत है?

भवानंद -महेंद्र सिंह! मेरा ख्याल था कि तुम मनुष्यों के समान मनुष्य होगे। लेकिन देखा- जैसे सब है, वैसे तुम भी हो- घी-दूध खाकर भी दम नहीं। देखो, सांप मिट्टी में अपने पेट को घसीटता हुआ चलता है- उससे बढ़कर तो शायद हीन कोई न होगा; लेकिन उसके शरीर पर भी पैर रख देने पर वह फन काढ़ लेता है। तुम लोगों का धैर्य क्या किसी तरह भी नष्ट नहीं होता? देखो, कितने देशी शहर है- मगध, मिथिला, काशी, कराची, दिल्ली, काश्मीर- उन जगहों की ऐसी दुर्दशा है? किस देश के मनुष्य भोजन के अभाव में घास खा रहे हैं? किस देश की जनता कांटें खाती है, लता-पत्ता खाती है? किस देश के मनुष्य स्यार, कुत्ते और मुर्दे खाते है? आदमी अपने संदूक में धन रखकर भी निश्चित नहीं है- सिंहासन पर शालिग्राम बैठाकर निश्चित नहीं है- घर में बहू-नौकर-मजदूरनी रखकर निश्चित नहीं है! हर देश का राजा अपनी प्रजा की दशा का, भरण-पोषण का ख्याल रखता है; हमारे देश का मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा कर रहा है? धर्म गया, जाति गई, मन गया- अब तो प्राणों पर बाजी आ गई है। इन नशेबाज दाड़ीवालों को बिना भगाए क्या हिंदू हिंदू रह जाएंगे?

महेंद्र- कैसे भगाओगे?

भवानंद -मारकर!

महेंद्र-तुम अकेले भगाओगे- एक थप्पड़ मारकर क्या?

भवानंद ने फिर गाया-

सप्तकोटि कण्ठ कलकल निनादकराले,

द्विसप्तकोटिभुजैर्धृत खरकरवाले,

अबला केनो मां एतो बले।

जिस जगह जंगल के समीप राज-पथ पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारों ओर देखा था उसी राह से इन लोगों को गुजरना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचने पर सिपाहियों ने देखा कि एक शिलाखंड पर जंगल के किनारे एक पुरुष खड़ा है। हलकी चांदनी में उस पुरुष का काला शरीर चमकता हुआ देखकर सिपाही बोला--देखो एक साला और यहां खड़ा है। इस पर उसे पकड़ने के लिए एक आदमी दौड़ा, लेकिन वह आदमी वहीं खड़ा रहा, भागा नहीं- पकड़कर हवलदार के पास ले आने पर भी वह व्यक्ति कुछ न बोला। हवलदार ने कहा-इस साले के सिर पर गठरी लादो! सिपाहियों के एक भारी गठरी देने पर उसने भी सिर पर ले ली। तब हवलदार पीछे पलटकर गाड़ी के साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल चलने की आवाज हुई- हवलदार माथे में गोली खाकर गिर पड़ा।

इसी साले ने हवलदार को मारा है! कहकर एक सिपाही ने उस मोटिया का हाथ पकड़ लिया। मोटिये के हाथ में तब तक पिस्तौल थी। मोटिये ने अपने सिर का बोझ फेंककर और तुरंत पलटकर उस सिपाही के माथे पर आघात किया, सिपाही का माथा फट गया और जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय हरि! हरि! हरि! पुकारता दो सौ व्यक्तियों ने आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही गोरे साहब के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब भी डाका पड़ा है- विचार कर तुरंत गाड़ी के पास पहुंचा और सिपाहियों को चौकोर खड़े होने की आज्ञा दी। अंग्रेजों का नशा विपद् के समय नहीं रहता। सिपाहियों के उस तरह खड़े होते ही दूसरी आज्ञा से उन्होंने अपनी-अपनी बंदूकें संभाली। इसी समय एकाएक साहब की कमर की तलवार किसी ने छीन ली और फौरन उसने एक बार में साहब का सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया- साहब का धड़ घोड़े से गिरा। फायर करने का हुक्म वह दे न सका। तब लोगों ने देखा कि एक व्यक्ति गाड़ी पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए ललकार रहा है- मारो, सिपाहियों को मारो.....मारो! साथ ही हरि हरि! का जय नाद भी करता जाता है। वह व्यक्ति और कोई नहीं भवानंद था।

एकाएक अपने साहब को मरा हुआ देख और अपनी रक्षा के लिए किसी को आज्ञा देते न देखकर सरकारी सिपाही डटकर भी निश्चेष्ट हो गए। इस अवसर पर तेजस्वी डाकुओं ने अपने सिपाहियों को हताहत कर आगे बढ़, गाड़ी पर रखे हुए खजाने पर अधिकार जमा लिया। सरकारी फौजी टुकड़ी भयभीत होकर भागी।

अंत में वह व्यक्ति सामने आया जो दल का नेतृत्व करता था और पहाड़ी पर खड़ा था। उसने आकर भवानंद को गले लगा लिया। भवानंद ने कहा-भाई जीवानंद! तुम्हारा नाम सार्थक हो?

इसके बाद अपहृत धन को यथास्थान भेजने का भार जीवानंद पर रहा। वह अपने अनुचरों के साथ खजाना लेकर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान में चले गए। भवानंद अकेले खड़े रह गए।

बैलगाड़ी पर से कूदकर एक सिपाही की तलवार छीनकर महेंद्र सिंह ने भी चाहा कि युद्ध में योग दें। लेकिन इसी समय उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि युद्ध में लगा हुआ दल और कुछ नहीं, डाकुओं का दल है-धन छीनने के लिए इन लोगों ने सिपाहियों पर आक्रमण किया है। यह विचार कर महेंद्र युद्ध से विरत हो दूर जा खड़े हुए। उन्होंने सोचा कि डाकुओं का साथ देने से उन्हें भी दुराचार का भागी बनना पड़ेगा। वे तलवार फेंककर धीरे-धीरे वह स्थान त्यागकर जा रहे थे, इसी समय भवानंद उसके पास आकर खड़े हो गए। महेंद्र ने पूछा-महाशय! आप कौन हैं?

भवानंद ने कहा-इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है?

महेंद्र-मेरा कुछ प्रयोजन है- आज आपके द्वारा मैं विशेष उपकृत हुआ हूं।

भवानन्द-मुझे ऐसा नहीं था कि तुम्हें इतना ज्ञान है। हाथों में हथियार रहते हुए भी तुम युद्ध से विरत रहे... जमींदारों के लड़के घी-दूध का श्राद्ध करना तो जानते है, लेकिन काम के समय बंदर बन जाते हैं!

भवानंद की बात समाप्त होते-न-होते महेंद्र घृणा के साथ कहा-यह तो अपराध है, डकैती है

भवानंद ने कहा- हां डकैती! हम लोगों के द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हुआ था, साथ ही और भी कुछ उपकार कर देने की इच्छा है!

महेंद्र-तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है लेकिन और क्या उपकार करोगे? फिर डाकुओं द्वारा उपकृत होने के बदले अनुपकृत होना ही अच्छा है।

भवानंद-उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, तुम्हारी स्त्री-कन्या से मुलाकात करा दूंगा!

महेंद्र पलटकर खड़े हो गए, बोले-क्या कहा?

भवानंद ने इसका कोई जवाब न देकर पैर बढ़ाया।

अंत में महेंद्र भी साथ-साथ आने लगे, साथ ही मन-ही-मन सोचते जाते थे-यह सब कैसे डाकू हैं?....

जिस जगह जंगल के समीप राज-पथ पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारों ओर देखा था उसी राह से इन लोगों को गुजरना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचने पर सिपाहियों ने देखा कि एक शिलाखंड पर जंगल के किनारे एक पुरुष खड़ा है। हलकी चांदनी में उस पुरुष का काला शरीर चमकता हुआ देखकर सिपाही बोला--देखो एक साला और यहां खड़ा है। इस पर उसे पकड़ने के लिए एक आदमी दौड़ा, लेकिन वह आदमी वहीं खड़ा रहा, भागा नहीं- पकड़कर हवलदार के पास ले आने पर भी वह व्यक्ति कुछ न बोला। हवलदार ने कहा-इस साले के सिर पर गठरी लादो! सिपाहियों के एक भारी गठरी देने पर उसने भी सिर पर ले ली। तब हवलदार पीछे पलटकर गाड़ी के साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल चलने की आवाज हुई- हवलदार माथे में गोली खाकर गिर पड़ा।

इसी साले ने हवलदार को मारा है! कहकर एक सिपाही ने उस मोटिया का हाथ पकड़ लिया। मोटिये के हाथ में तब तक पिस्तौल थी। मोटिये ने अपने सिर का बोझ फेंककर और तुरंत पलटकर उस सिपाही के माथे पर आघात किया, सिपाही का माथा फट गया

और जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय हरि! हरि! हरि! पुकारता दो सौ व्यक्तियों ने आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही गोरे साहब के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब भी डाका पड़ा है- विचार कर तुरंत गाड़ी के पास पहुंचा और सिपाहियों को चौकोर खड़े होने की आज्ञा दी। अंग्रेजों का नशा विपद् के समय नहीं रहता। सिपाहियों के उस तरह खड़े होते ही दूसरी आज्ञा से उन्होंने अपनी-अपनी बंदूकें संभाली। इसी समय एकाएक साहब की कमर की तलवार किसी ने छीन ली और फौरन उसने एक बार में साहब का सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया- साहब का धड़ घोड़े से गिरा। फायर करने का हुक्म वह दे न सका। तब लोगों ने देखा कि एक व्यक्ति गाड़ी पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए ललकार रहा है- मारो, सिपाहियों को मारो.....मारो! साथ ही हरि हरि! का जय नाद भी करता जाता है। वह व्यक्ति और कोई नहीं भवानंद था।

एकाएक अपने साहब को मरा हुआ देख और अपनी रक्षा के लिए किसी को आज्ञा देते न देखकर सरकारी सिपाही डटकर भी निश्चेष्ट हो गए। इस अवसर पर तेजस्वी डाकुओं ने अपने सिपाहियों को हताहत कर आगे बढ़, गाड़ी पर रखे हुए खजाने पर अधिकार जमा लिया। सरकारी फौजी टुकड़ी भयभीत होकर भागी।

अंत में वह व्यक्ति सामने आया जो दल का नेतृत्व करता था और पहाड़ी पर खड़ा था। उसने आकर भवानंद को गले लगा लिया। भवानंद ने कहा-भाई जीवानंद! तुम्हारा नाम सार्थक हो?

इसके बाद अपहृत धन को यथास्थान भेजने का भार जीवानंद पर रहा। वह अपने अनुचरों के साथ खजाना लेकर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान में चले गए। भवानंद अकेले खड़े रह गए।

बैलगाड़ी पर से कूदकर एक सिपाही की तलवार छीनकर महेंद्र सिंह ने भी चाहा कि युद्ध

में योग दें। लेकिन इसी समय उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि युद्ध में लगा हुआ दल और कुछ नहीं, डाकुओं का दल है-धन छीनने के लिए इन लोगों ने सिपाहियों पर आक्रमण किया है। यह विचार कर महेंद्र युद्ध से विरत हो दूर जा खड़े हुए। उन्होंने सोचा कि डाकुओं का साथ देने से उन्हें भी दुराचार का भागी बनना पड़ेगा। वे तलवार फेंककर धीरे-धीरे वह स्थान त्यागकर जा रहे थे, इसी समय भवानंद उसके पास आकर खड़े हो गए। महेंद्र ने पूछा-महाशय! आप कौन हैं?

भवानंद ने कहा-इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है?

महेंद्र-मेरा कुछ प्रयोजन है- आज आपके द्वारा मैं विशेष उपकृत हुआ हूं।

भवानन्द-मुझे ऐसा नहीं था कि तुम्हें इतना ज्ञान है। हाथों में हथियार रहते हुए भी तुम युद्ध से विरत रहे... जमींदारों के लड़के घी-दूध का श्राद्ध करना तो जानते है, लेकिन काम के समय बंदर बन जाते हैं!

भवानंद की बात समाप्त होते-न-होते महेंद्र घृणा के साथ कहा-यह तो अपराध है, डकैती है

भवानंद ने कहा- हां डकैती! हम लोगों के द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हुआ था, साथ ही और भी कुछ उपकार कर देने की इच्छा है!

महेंद्र-तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है लेकिन और क्या उपकार करोगे? फिर डाकुओं द्वारा उपकृत होने के बदले अनुपकृत होना ही अच्छा है।

भवानंद-उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, तुम्हारी स्त्री-कन्या से मुलाकात करा दूंगा!

महेंद्र पलटकर खड़े हो गए, बोले-क्या कहा?

भवानंद ने इसका कोई जवाब न देकर पैर बढ़ाया।

अंत में महेंद्र भी साथ-साथ आने लगे, साथ ही मन-ही-मन सोचते जाते थे-यह सब कैसे डाकू हैं?....

उस चांदनी रात में दोनों ही जंगल पार करते हुए चले जा रहे थे। महेंद्र चुप, शांत, गर्वित और कुछ कौतूहल में भी थे।

सहसा भवानंद ने भिन्न रूप रूप धारण कर लिया। वे अब स्थित-मूर्ति, धीर-प्रवृत्ति सन्यासी न रहे- वह रणनिपुण वीरमूर्ति, अंग्रेज सेनाध्यक्ष का सिर काटने वाला रुद्ररूप अब न रहा। अभी जिस गर्वित भाव से वे महेंद्र का तिरस्कार कर रहे थे, अब भवानंद वह न थे- मानो ज्योत्सनामयी, शांतिमयी पृथिवी की तरु-कानन-नद-नदीमय शोभा निरखकर उसके चित्त में विशेष परिवर्तन हो गया हो। चन्द्रोदय होने पर समुद्र मानों हंस उठा। भवानंद हंसमुख, मुखर, प्रियसंभाषी बन गए और बातचीत के लिए बहुत बेचैन हो उठे। भवानंद ने बातचीत करने के अनेक उपाय रचे, लेकिन महेन्द्र चुप ही रहे। तब निरुपाय होकर भवानंद ने गाना शुरू किया-

वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्.....।

महेंद्र गाना सुनकर कुछ आश्चर्य में आए। वे कुछ समझ न सके- सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्यश्यामला माता कौन है? उन्होंने पूछा-यह माता कौन है?

कोई उत्तर न देकर भवानंद गाते रहे-

शुभ्रज्योत्सना पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्। ...

महेंद्र बोले-यह तो देश है, यह तो मां नहीं है।

भवानंद ने कहा -हमलोग दूसरी किसी मां को नहीं मानते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी- हमारी माता, जन्मभूमि ही हमारी जननी है- हमारे न मां है, न पिता है, न भाई है- कुछ नहीं है, स्त्री भी नहीं, घर भी नहीं, मकान भी नहीं, हमारी अगर कोई है तो वही सुजला, सुफला, मलयजसमीरण-शीतला, शस्यश्यामला...

अब महेंद्र ने समझकर कहा -तो फिर गाओ!

भवानंद फिर गाने लगे-

वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम

शस्यश्यामलां मातरम्.....।

शुभ्र ज्योत्सना-पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां, वरदां मातरम्।।

वन्दे मातरम्.....

सप्तकोटिकण्ठ-कलकल निनादकराले,

द्विसप्तकोटि भुजैधृत खरकरवाले,

अबला केनो मां तुमि एतो बले!

बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्

रिपुदलवारिणीम् मातरम्॥ वन्दे....

तुमी विद्या, तुमी धर्म,

तुमी हरि, तुमी कर्म,

त्वं हि प्राण : शरीरे।

बाहुते तुमी मां शक्ति,

हृदये तुमी मां भक्ति,

तोमारई प्रतिमा गड़ी मन्दिरे-मन्दिरे।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणीं,

कमला कमल-दल-विहारिणीं,

वाणी विद्यादायिनीं नमामि त्वं

नमामि कमलां, अमलां, अतुलाम,

सुजलां, सुफलां, मातरम्

वन्दे मातरम्॥

श्यामलां, सरलां, सुस्मितां, भूषिताम्

धरणी, भरणी मातरम्॥ वन्दे मातरम्..

आनन्दमठ भाग-4

सबेरा हो गया है। वह जनहीन कानन अब तक अंधकारमय और शब्दहीन था। अब आलोकमय प्रात: काल में आनंदमय कानन के आनंद-मठ सत्यानंद स्वामी मृगचर्म पर बैठे हुए संध्या कर रहे है। पास में भी जीवानंद बैठे हैं। ऐसे ही समय महेंद्र को साथ में लिए हुए स्वामी भवानंद वहां उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी चुपचाप संध्या में तल्लीन रहे, किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। इसके बाद संध्या समाप्त हो जाने पर भवानंद और जीवानंद दोनों ने उठकर उनके चरणों में प्रणाम किया, पदधूलि ग्रहण करने के बाद दोनों बैठ गए। सत्यानंद इसी समय भवानंद को इशारे से बाहर बुला ले गए। हम नहीं जानते कि उन लोगों में क्या बातें हुई। कुछ देर बाद उन दोनों के मंदिर में लौट आने पर मंद-मंद मुसकाते हुए ब्रह्मचारी ने महेंद्र से कहा-बेटा! मैं तुम्हारे दु:ख से बहुत दु:खी हूं। केवल उन्हीं दीनबंधु प्रभु की ही कृपा से कल रात तुम्हारी स्त्री और कन्या को किसी तरह बचा सका। यह उन्हीं ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का सारा वृत्तांत सुना दिया। इसके बाद उन्होंने कहा-चलो वे लोग जहां हैं वहीं तुम्हें ले चलें!

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे और महेंद्र पीछे देवालय के अंदर घुसे। प्रवेश कर महेंद्र ने देखा- बड़ा ही लंबा चौड़ा और ऊंचा कमरा है। इस अरुणोदय काल में जबकि बाहर का जंगल सूर्य के प्रकाश में हीरों के समान चमक रहा है, उस समय भी इस कमरे में प्राय: अंधकार है। घर के अंदर क्या है- पहले तो महेंद्र यह देख न सके, किंतु कुछ देर बाद देखते-देखते उन्हें दिखाई दिया कि एक विराट चतुर्भुज मूर्ति है, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, कौस्तुभमणि हृदय पर धारण किए, सामने घूमता सुदर्शनचक्र लिए स्थापित है। मधुकैटभ जैसी दो विशाल छिन्नमस्तक मूर्तियां खून से लथपथ सी चित्रित सामने पड़ी है। बाएं लक्ष्मी आलुलायित-कुंतला शतदल-मालामण्डिता, भयत्रस्त की तरह खड़ी हैं। दाहिने सरस्वती पुस्तक, वीणा और मूर्तिमयी राग-रागिनी आदि से घिरी हुई स्तवन कर रही है। विष्णु की गोद में एक मोहिनी मूर्ति-लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुंदरी, उनसे भी अधिक ऐश्वर्यमयी- अंकित है। गंधर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षसगण उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने अतीव गंभीर, अतीव मधुर स्वर में महेंद्र से पूछा-सब कुछ देख रहे हो?

महेंद्र ने उत्तर दिया-देख रहा हूं

ब्रह्मचारी-विष्णु की गोद में कौन हैं, देखते हो?

महेंद्र-देखा, कौन हैं वह?

ब्रह्मचारी -मां!

महेंद्र -यह मां कौन है?

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया -हम जिनकी संतान हैं।

महेंद्र -कौन है वह?

ब्रह्मचारी -समय पर पहचान जाओगे। बोलो, वंदे मातरम्! अब चलो, आगे चलो!

ब्रह्मचारी अब महेंद्र को एक दूसरे कमरे में ले गए। वहां जाकर महेंद्र ने देखा- एक अद्भुत शोभा-संपन्न, सर्वाभरणभूषित जगद्धात्री की मूर्ति विराजमान है। महेंद्र ने पूछा-यह कौन हैं?

ब्रह्मचारी-मां, जो वहां थी।

महेंद्र-यह कौन हैं?

ब्रह्मचारी -इन्होंने यह हाथी, सिंह आदि वन्य पशुओं को पैरों से रौंदकर उनके आवास-स्थान पर अपना पद्मासन स्थापित किया। ये सर्वालंकार-परिभूषिता हास्यमयी सुंदरी है- यही बालसूर्य के स्वर्णिम आलोक आदि ऐश्वर्यो की अधिष्ठात्री हैं- इन्हें प्रणाम करो!

महेंद्र ने भक्तिभाव से जगद्धात्री-रुपिणी मातृभूमि-भारतमाता को प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारी ने उन्हें एक अंधेरी सुरंग दिखाकर कहा-इस राह से आओ! ब्रह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले। महेंद्र भयभीत चित्त से पीछे-पीछे चल रहे थे। भूगर्भ की अंधेरी कोठरी में न जाने कहां से हलका उजाला आ रहा था। उस क्षीण आलोक में उन्हें एक काली मूर्ति दिखाई दी।

ब्रह्मचारी ने कहा-देखो अब मां का कैसा स्वरूप है!

महेंद्र ने कहा-काली?

ब्रह्मचारी-हां मां काली- अंधकार से घिरी हुई कालिमामयी समय हरनेवाली है इसीलिए नगन् हैं। आज देश चारों तरफ श्मशान हो रहा है, इसलिए मां कंकालमालिनी है- अपने शिव को अपने ही पैरों तले रौंद रही हैं। हाय मां! ब्रह्मचारी की आंखें से आंसू की धारा-बहने लगी।

आनंद-वन से बाहर निकल आने पर कुछ दूर तक राह चलने में तो जंगल उनके एक बाजू रहा। जंगल की बगल से ही शायद वह राह गई है। एक जगह जंगल में से ही एक छोटी

नदी कलकल कर बहती है। जल बहुत ही साफ है, लेकिन देखने पर जंगल की छाया से जल भी काला दिखाई देता है। नदी के दोनों बाजू सघन बड़े-बड़े वृक्ष मनोरम छाया किए हुए हैं, विभिन्न पक्षी उन पेड़ों पर बैठे कलरव कर रहे हैं। उनका कलरव-कूजन, नदी की कलकल-ध्वनि से मिलकर अपूर्व श्रुतिमधुर जान पड़ता है। वैसे ही वृक्ष के रंग से नदी-जल का रंग भी वैसा ही झलक रहा है। कल्याणी का मन भी शायद उस रंग में मिल गया। कल्याणी नदी तट के एक वृक्ष से लगकर बैठ गई। उन्होंने अपने पति को भी बैठने को कहा। कल्याणी अपने पति के हाथों को अपने हाथों में लिए बैठी रही। फिर बोली-तुम्हें आज बहुत उदास देखती हूं। विपद जो आयी थी, उससे तो उद्धार मिल गया है, अब इतना दु:ख क्यों?

महेंद्र ने एक ठंढी सांस लेकर कहा-मैं अब अपने आपे में नहीं हूं। मैं क्या करूं- कुछ समझ में नहीं आता।...

कल्याणी-क्यों?

महेंद्र-तुम्हारे खो जाने पर मेरा क्या हाल हुआ, सुनो!...

यह कहकर महेंद्र ने अपनी सारी कहानी सविस्तार वर्णन कर दी।

कल्याणी ने कहा-मुझे भी बड़ी विपदों का सामना करना पड़ा, बहुत तकलीफ उठाई। तुम उन्हें सुनकर क्या करोगे! इतने दु:खों पर भी मुझे कैसे नींद आई थी, कह नहीं सकती-कल आखिर रात भी मैं सोई थी। नींद में मैंने स्वपन् देखा। देखा- नहीं कह सकती, किस पुण्यबल से मैं एक अपूर्व स्थान में पहुंच गई हूं। वहां मिट्टी नहीं है, केवल प्रकाश- अति शीतल- बादल हट जाने पर जैसा प्रकाश रहता है, वैसा ही प्रकाश! वहां मनुष्य नहीं थे, केवल प्रकाशमय मूर्तियां थी, वहां शब्द नहीं होता था, केवल दूर अपूर्व संगीत जैसी ध्वनि

सुनाई पड़ती थी। सदाबहार मल्लिका-मालती-गंधराज की अपूर्व सुगंध फैली थी। वहां सबसे ऊंचे दर्शनीय स्थान पर कोई बैठा था, मानो आग में तपा हुआ नील-कमल धधकता हुआ बैठा हो। उसके माथे पर सूर्य के प्रकाश जैसा मुकुट था; उसके चार हाथ थे। उसके दोनों बाजू कौन था, मैं पहचान न सकी, लेकिन कोई स्त्री-मूर्ति थी। लेकिन उनमें इतनी ज्योति, इतना रूप, इतना सौरभ था कि मैं उधर देखते ही विह्वल हो गई- उधर ताक न सकी, देख न सकी कि वे कौन है? उन्हीं चतुर्भुज के सामने एक स्त्री और खड़ी थी- वह भी ज्योतिर्मयी थी, लेकिन चारों तरफ मेघ जैसा छाया था, आभा पूरी तरह दिखाई नहीं देती थी। अस्पष्ट रूप में जान पड़ता था कि वह नारीमूर्ति अति दुर्बल, मर्मपीडित, अनन्य-सुंदरी, लेकिन रो रही है। वहां के मंद-सुगंध पवन ने मानों मुझे घुमाते-फिराते वहां चतुर्भुज मूर्ति के सामने ला खड़ा किया। उस मेधमंडिता दुर्बल स्त्री ने मुझे देखकर कहा- यही है, इसी के कारण महेंद्र मेरी गोद में आता नहीं है।....

इसके बाद ही एक अपूर्व वंशी जैसी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। वह शब्द उन चतुर्भुज का था, उन्होंने मुझे कहा-तुम अपने पति को छोड़कर मेरे पास चली आओ! यह तुम लोगों की मां है महेंद्र इसकी सेवा करेगा। तुम यदि पति के पास रहोगी तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा। तुम चली जाओ। मैंने रोकर कहा-पति को छोड़कर मैं कैसे चली आऊं? इसके बाद ही फिर उसी अपूर्व स्वर में उन्होंने कहा-मैं ही स्वामी, मैं ही पुत्र, मैं ही माता, मैं ही पिता और मैं ही कन्या हूं, मेरे पास आओ! मैंने क्या उत्तर दिया, मुझे याद नहीं, लेकिन इसके बाद ही नींद खुल गई। यह कहकर कल्याणी चुप हो रही।

ब्रह्मचारी -हमलोग संतान हैं। अपनी मां के हाथों में अभी केवल अस्त्र रख दिए हैं। बोलो- वन्देमातरम् !

वन्देमातरम्- कहकर महेंद्र ने मां काली को प्रणाम किया।

अब ब्रह्मचारी ने कहा-इस राह से आओ! यह कहकर वे दूसरी सुरंग में चले। सहसा उन लोगों के सामने प्रात: सूर्य की किरणें चमक उठीं, चारों तरफ मधुर से पक्षी कूंज उठे। सामने देखा, एक संगमर्मर से निर्मित विशाल मंदिर के बीच सुवर्ण-निर्मित दशभुज-प्रतिमा नव-अरूण की किरणा से ज्योतिर्मयी होकर हंस रही हैं। ब्रह्मचारी ने प्रणाम कर कहा-ये हैं मां, जो भविष्यत में उनका रूप होगा। इनके दशभुज दशों दिशाओं में प्रसारित हैं, उनमें नाना आयुधरूप में नाना शक्तियां शोभित हैं। पैरों के नीचे शत्रु दबे हुए हैं, पैरों के निकट वीर-केशरी भी शत्रु-निपीड़न से मगन् है। दिक्भुजा-कहते-कहते सत्यानंद गद्गद् हो रोने लगे-दिक्भुजा- नानाप्रहरणधारिणी, शत्रुविमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी, दाहिने लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बाएं वाणी विद्याविज्ञानदायिनी- साथ में शक्ति के आधार कार्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश- आओ, हम दोनों मां को प्रणाम करें! इस पर दोनों ही हाथ जोड़कर माता का रूप निहारते हुए प्रार्थना करने लगे-

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये ˜यम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुते॥

दोनों के भक्ति-भाव से प्रणाम कर चुकने के बाद, भरे हुए गले से महेंद्र ने पूछा- मां की ऐसी मूर्ति कब देखने को मिलेगी?

ब्रह्मचारी ने कहा -जिस दिन मां की सारी सन्तानें एक साथ मां को बुलाएंगी, उसी दिन मां प्रसन्न होंगी।

एकाएक महेंद्र ने पूछा -मेरी स्त्री-कन्या कहां हैं?

ब्रह्मचारी-चलो, देखोगे? चलो!

महेंद्र -उन लोगों से भी एक बार मैं मिलूंगा, इसके बाद उन्हें बिदा कर दूंगा।....

ब्रह्मचारी-क्यों बिदा करोगे?

महेंद्र -मैं भी यह महामंत्र ग्रहण करूंगा!

ब्रह्मचारी -उन्हें कहां विदा करोगे?

महेंद्र ने विचारकर कहा-मेरे धर पर कोई नहीं है, मेरा दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। इस महामारी के समय और कहां स्थान मिलेगा।

ब्रह्मचारी-जिस राह से यहां आये हो, उसी राह से मंदिर से बाहर जाओ! मंदिर के दरवाजे पर तुम्हें स्त्री-कन्या दिखाई देंगी। कल्याणी अभी तक निराहार है। जहां वे दोनों बैठी हैं वहीं भोजन की सामग्री पाओगे। उसे भोजन कराके तुम्हारी जो इच्छा हो करना। अब हम लोगों में से किसी से कुछ देर मुलाकात न होगी। यदि तुम्हारा मन इधर होगा तो समय पर मैं तुमसे मिलूंगा।

इसके बाद ही किसी तरह से एकाएक ब्रह्मचारी अंतर्हित हो गए। महेंद्र ने पूर्व-परिचित राह से लौटकर देखा- नाटय मंदिर में कल्याणी कन्या को लिए हुए बैठी है।

इधर सत्यानंद एक दूसरी सुरंग में जाकर एक अकेली भूगर्भस्थित कोठरी में उतर पड़े। वहां जीवानन्द और भुवानंद बैठे हुए रुपये गिन-गिनकर रख रहे थे। उस कमरे में ढेरों सोना, चांदी, तांबा, हीरे, मोती, मूंगे रखे हुए थे। गत रात खजाने की लूट का माल ये लोग

गिन-गिनकर रख रहे थे।

सत्यानंद ने कमरे में प्रवेश कर कहा-जीवानंद! महेंद्र हमारे साथ आएगा। उसके आने से संतानों का विशेष कल्याण होगा। कारण आने से उसके पूर्वजों का संचित धन मां की सेवा में अर्पित होगा। लेकिन जब तक वह तन-मन-वचन से मातृभक्त न हो, तब तक उसे ग्रहण न करना। तुम लोगों के हाथ का काम समाप्त होने पर तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका अनुसरण करना, उचित समय पर उसे श्रीविष्णुमंडप में उपस्थित करना, और समय हो या कुसमय हो, उन लोगों की रक्षा अवश्य करना। कारण, जैसे दुष्टों का दमन और दलन संतानों का धर्म है, वैसे ही शिष्टों की रक्षा करना भी संतानों का धर्म है!

अनेक दु:खों के बाद महेंद्र और कल्याणी में मुलाकात हुई। कल्याणी रोकर पछाड़ खा गिरी। महेंद्र और भी रोए। रोने-गाने के बाद आंखों के पोंछने की धूम मच गई। जितने बार आंखें पोंछी जाती थी, उतनीही बार आंसू आ जाते थे। आंसू बंद करने के लिए कल्याणी ने भोजन की बात उठाई। ब्रह्मचारीजी के अनुचर जो खाना रख गए थे, कल्याणी ने उसे खाने के लिए महेंद्र से कहा। दुर्भिक्ष के दिनों में इधर अन्न भोजन की कोई संभावना नहीं थी, फिर भी आसपास जो कुछ है, संतानों के लिए वह सुलभ है। वह जंगल साधारण मनुष्यों के लिए अगम्य है जहां जिस वृक्ष में जो फल होते हैं, उन्हें भूखे लोग तोड़कर खाते हैं, किंतु इस अगम्य वन के वृक्षों का फल कोई नहीं पाता इसलिए ब्रह्मचारी के अनुचर ढेरों फल और दूध लाकर रख जाने में समर्थ हुए। संन्यासीजी की सम्पत्ति में अनेक गौएं भी हैं। कल्याणी के अनुरोध पर महेंद्र ने पहले कुछ भोजन किया, इसके बाद बचा हुआ भोजन अकेले में बैठकर कल्याणी ने खाया। उन लोगों ने थोड़ा दूध कन्या को पिलाया, बाकी बचा हुआ रख लिया- फिर पिलाने की आशा ही तो माता-पिता का संतान के प्रति धर्म है। इसके बाद थकावट और भोजन के कारण दोनों ने निंद्राभिभूत होकर आराम किया।

नींद से उठने के बाद दोनों विचार करने लगे-अब कहां चलना चाहिए? कल्याणी ने कहा- घर पर विपद की संभावना समझकर हमने गृहत्याग किया था, लेकिन अब देखती हूं कि

घर से भी अधिक कष्ट बाहर है। न हो तो चलो, घर ही लौट चलें! महेंद्र की भी यही इच्छा थी। महेंद्र की इच्छा है कि कल्याणी को घर पर बैठाकर, कोई एक विश्वासी अभिभावक नियुक्त कर, इस परमरमणीय, अपार्थिव पवित्र मातृसेवा-व्रत को ग्रहण करेंगे। अत: इस बात पर वे सहज ही सहमत हो गए। अब दोनो ही प्राणियों ने थकावट दूर होने पर कन्या को गोद में लेकर फिर पदचिन्ह की तरफ यात्रा की।

किंतु पदचिन्ह जाने के लिए किस राह से जाना होगा- उस दुर्भेद्य वन में वे कुछ भी समझ न सके। उन्होंने समझा था कि जंगल पार होते ही हमें राह मिल जाएगी और पदचिन्ह पहुंच सकेंगे। लेकिन वहां तो बन का ही थाह नहीं लगता है। बहुत देर तक वे लोग वन के अंदर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे और बार-बार घूम-फिरकर वे लोग मठ में ही पहुंच जाते थे। उन्हें जंगल से पार होनेवाली राह मिलती ही न थी। यह देखते हुए सामने एक वैष्णव वेशधारी खड़े हंस रहे थे। यह देखकर महेंद्र ने रुष्ट होकर उनसे कहा-गोस्वामी! खड़े-खड़े हंसते क्यों हो?

गोस्वामी बोले-तुमलोग इस वन में आए कैसे?

महेंद्र बोले-जैसे भी हो आ ही गए हैं!

गोस्वामी-प्रवेश कर सके तो बाहर क्यों नहीं निकल पाते हो? यह करकर वैष्णव फिर हंसने लगे।

महेंद्र ने वैसे ही रुष्ट स्वर में कहा-हंसते तो हो, लेकिन क्या तुम इसके बाहर निकल सकते हो?

वैष्णव ने कहा-मेरे साथ आओ, मैं राह बता देता हूं। अवश्य ही तुम लोग ब्रह्मचारीजी के संग आए होंगे, अन्यथा न तो कोई यहां आ सकता है, न निकल ही सकता है। अपरिचितों के लिए यह भूल-भुलैया है।

यह सुनकर महेंद्र ने कहा-आप भी सन्तान हैं?

वैष्णव ने कहा-हां, मैं भी सन्तान हूं। मेरे साथ आओ। तुम्हें राह दिखाने के लिए ही मैं यहां खड़ा हूं।

महेंद्र ने पूछा -आपका नाम क्या है?

वैष्णव ने उत्तर दिया-मेरा नाम धीरानंद स्वामी है।

यह कहकर धीरानंद आगे-आगे चले और कल्याणी के साथ महेंद्र पीछे-पीछे। धीरानंद ने एक बड़ी सी दुर्गम राह से उन्हें जंगल के बाहर कर दिया और आगे की राह बता दी। इसके बाद वे फिर जंगल में पलटकर गायब हो गए।

बुरी बात ही मां-बाप के मुंह से पहले निकलती है- जहां अधिक प्रेम होता है, वहां भय भी बहुत अधिक होता है। महेंद्र ने यह कभी देखा न था कि टिकिया पहले कितनी बड़ी थी। अब उन्होंने टिकिया अपने हाथ में उठाकर मजे में उसे देखकर कहा-मालूम तो होता है कि कुछ खा गई है।

कल्याणी को कुछ ऐसा ही विश्वास हुआ। टिकिया हाथ में लेकर बहुत देर तक वह भी

उसकी जांच करती रही। इधर कन्या ने दो-एक घूंट रस जो चूस लिया था, उससे उसकी दशा बिगड़ने लगी- वह छटपटाने लगी, रोने लगी, अंत में कुछ बेहोश सी हो पड़ी। तब कल्याणी ने पति से कहा-अब क्या देखते हो? जिस राह पर भगवान ने बुलाया है, उसी राह पर सुकुमारी चली, मुझे भी वही राह लेनी पड़ेगी।

यह कहकर कल्याणी ने उस टिकिया को उठाकर मुंह में डाल लिया और एक क्षण में निगल गई।

महेंद्र रोने लगे-क्या किया, कल्याणी! अरे तुमने यह क्या किया है?....

कल्याणी ने कोई उत्तर न देकर पति के पैरों की धूलि माथे लगाई, फिर बोली-प्रभु! बात बढ़ाने से बात बढ़ेगी...मैं चली।

कल्याणी! यह क्या किया?- कहकर महेंद्र चिल्लाकर रोने लगे।

बड़े ही धीमे स्वर में कल्याणी बोली-मैंने अच्छा ही किया है, इस नाचीज औरत के पीछे तुम अपनी मातृभूमि की सेवा से वंचित रहते। देखो मैं देववाक्य का उल्लंघन कर रही थी, इसलिए मेरी कन्या गई। थोड़ी और अवहेलना करने से तुम पर विपत्ति आती।

महेंद्र ने रोते हुए कहा-अरे, तुम्हें कहीं बैठाकर मैं चला जाता, कल्याणी!- कार्य सिद्ध हो जाने पर फिर हम लोग मिलकर सुखी होते। कल्याणी! मेरी सर्वस्व! तुमने यह क्या!! जिस भुजा के बल पर मैं तलवार पकड़ता, हाय! तुमने वही भुजा काट दी। तुम्हें खोकर मैं क्या रह पाऊंगा।....

कल्याणी-कहां मुझे ले जाते?- कहां स्थान है? मां-बाप, सगे-संबंधी सब इस दुर्दिन में चले गए हैं। किसके घर में जगह है, कहां जाने का विचार है? कहां ले जाओगे? मैं कालग्रह हूं- मैंने मरकर अच्छा ही किया है! मुझे आशीर्वाद दो, मैं उस आलोकमय लोक में जाकर तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूं और फिर तुम्हें पाउं।

यह कहकर कल्याणी ने फिर स्वामी का पदरेणु ग्रहण किया। महेंद्र कोई उत्तर न देकर रोते ही रहे। कल्याणी फिर अति मृदु, अति मधुर, अतीव स्नेहमय कंठ से बोली-देखो, देवताओं की इच्छा, किसकी मजाल है कि उसका उल्लंघन कर सके! मुझे जाने की आज्ञा उन्होंने दी है, तो क्या मैं किसी तरह भी रुक सकती हूं? मैं स्वयं न मरती तो कोई मार डालता! मैंने आत्महत्या कर अच्छा ही किया है। तुमने देशोद्धार का जो व्रत लिया है, उसे तन-मन-धन से पूरा करो- इसी में तुम्हें पुण्य होगा- इसी पुण्य से मुझे भी स्वर्गलाभ होगा। हम दोनों ही साथ-साथ अक्षय स्वर्गमुख का उपभोग करेंगे।

इधर बालिका एक बार दूध की उल्टी कर सम्भलने लगी। उसके पेट में जिस परिमाण में विष गया था, वह घातक नहीं था। लेकिन महेंद्र का ध्यान उस समय उधर न था। उन्होंने कन्या को कल्याणी की गोद में दे दोनों का प्रगाढ़ अलिंगन कर फूट-फूटकर रोना शुरू किया। उसी समय वन में से मधुर किंतु मेघ-गंभीर शब्द सुनाई पड़ने लगा-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरे!

उस समय कल्याणी पर विष का प्रभाव हो रहा था, चेतना कुछ लुप्त हो चली थी। उन्होंने अवचेतन मन से सुरा, मानो वैकुण्ठ से यह अपूर्व ध्वनि उभरकर गूंज रही है-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरे!

तब कल्याणी ने अप्सरानिंदित कंठ से बड़े ही मोहक स्वर में गाया-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!

वह महेंद्र से बोली- कहो हरे मुरारे मधुकैटभारे!

वन में गूंजने वाले मधुर स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर पर विमुग्ध होकर कातर हृदय से एक मात्र ईश्वर को ही सहाय समझाकर महेंद्र ने भी पुकारा-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!.....

तब मानो चारों तरफ से ध्वनि होने लगी--

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

और मानो वृक्ष के पत्तों से भी आवाज निकलने लगी-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

नदी के कलकल ध्वनि में भी वही शब्द हुआ-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

अब महेंद्र अपना शोक संताप भूल गए, उन्मत्त होकर वे कल्याणी के साथ एक स्वर से गाने लगे-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

जंगल में से भी उसके स्वर से मिली हुई वाणी निकली-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

कल्याणी का कंठ क्रमश: क्षीण होने लगा, फिर भी वह पुकार रही थी-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

इसके बाद ही उसका कंठ क्रमश: निस्तब्ध होने लगा, कल्याणी के मुंह से अब शब्द नहीं निकलता- आंखें ढंक गई, अंग शीतल हो गए। महेंद्र समझ गए कि कल्याणी ने हरे मुरारे कहते हुए बैकुंठ प्रयाण किया। इसके बाद ही पागलों की तरह उच्च स्वर से वन को कम्पित करते हुए पशु-पक्षियों को चौंकाते हुए महेंद्र पुकारने लगे-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

इसी समय किसी ने आकर उनका अलिंगन किया और उसी स्वर में वह भी कहने लगा-

हरे मुरारे मधुकैटभारे!....

तब उस अनंत ईश्वर की महिमा से, उस अनंत वन में अनंत पथगामी शरीर के सामने दोनों जन अनंत नाम-स्मरण करने लगे। पशु-पक्षाी नीरव थे, पृथ्वी अपूर्व शोभामयी थी- इस परम पावन गीत के उपयुक्त मंदिर था वह। सत्यानंद महेंद्र को बांहों में संभाल कर बैठ गए।

महेंद्र विस्मित, स्तम्भित होकर चुप हो रहे। ऊपर पेड़ पर कोई पक्षी बोल उठा, पपीहा अपनी बोली से आकाश गुंजाने लगा, कोकिल सप्त-स्वरों में गाने लगी, भृंगराज की झनकार से जंगल गूंज उठा। पैरों के नीचे तरिणी मृदु कल्लोल कर रही थी। बहुतेरे वन्य पुष्पों के सौरभ से मन हरा हो रहा था। कहीं-कहीं नदी-जल को सूर्य-रश्मि चमका रही थी। कहीं ताड़ के पत्ते हवा के झोंके से मरमरा रहे थे। दूर नीली पर्वत-श्रेणी दिखाई पड़ रही थी। दोनों ही जन मुग्ध-नीरव हो यह सब देखते रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा-क्या सोच रहे हो?

महेंद्र-यही सोचता हूं कि क्या करना चाहिए? यह स्वपन् केवल विभीषिका मात्र है, अपने ही हृदय में पैदा होकर अपने ही में लीन हो जाता है। चलो, घर चलें!

कल्याणी-जहां ईश्वर तुम्हें जाने को कहते हैं, तुम वहीं जाओ!

यह कहकर कल्याणी ने कन्या अपने पति की गोद में दे दी। महेंद्र ने उसे अपने गोद में लेकर पूछा-और तुम...तुम कहां जाओगी?

कल्याणी अपने दोनों हाथों से दोनों आंखों को ढंके हुए, साथ ही मस्तक पकड़े हुए बोली-मुझे भी भगवान ने जहां जाने को कहा है वहीं जाऊंगी।

महेंद्र चौंक उठे। बोले-वहां कहां? कैसे जाओगी?

कल्याणी ने अपने पास की वही जहर की डिबिया दिखाई।

महेंद्र ने डरते हुए भौंचक्का होकर कहा-यह क्या? जहर खाओगी?

कल्याणी-मन में तो सोचा था, खाऊंगी, लेकिन...

कल्याणी चुप होकर विचार में पड़ गई, महेंद्र उसका मुंह ताकते रहे- प्रति निमेश वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। उन्होंने देखा कि कल्याणी ने बात पूरी न कही, अत: बोले-लेकिन के बाद आगे क्या कह रही थीं?

कल्याणी-मन में था कि खाऊंगी, लेकिन तुम्हें छोड़कर, सुकुमारी कन्या को छोड़कर बैकुंठ जाने की भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं न मरूंगी!

यह कहकर कल्याणी ने विष की डिबिया जमीन पर रख दी। इसके बाद दोनों ही पत्नी-पुरुष भूत-भविष्य की अनेक बातें करने लगे। बातें करते हुए दोनों ही अन्यमनस्क हो उठे। इसी समय खेलते-खेलते सुकुमारी कन्या ने विष की डिबिया उठा ली। उसे किसी ने न देखा।

सुकुमारी ने मन में सोचा कि बढ़िया खेलने की चीज है। उसने इस डिबिया को एक बार बाएं हाथ में लेकर दाहिने हाथ से खींचा। इसके बाद दाहिने हाथ से पकड़कर बाएं हाथ से खींचा। इसके बाद दोनों हाथों से उसे खींचना शुरू किया। फल यह हुआ कि डिबिया खुल गई, उसमें से जहर की टिकिया बाहर गिर पड़ी।

बाप के कपड़े के ऊपर वह टिकिया गिरी- सुकुमारी ने उसे देखा, मन में सोचा, कि यह एक दूसरी खेलने की चीज है डिबिया के दोनों ढक्कन उसने छोड़ दिए और उस टिकिया को उठा लिया।

डिबिया को सुकुमारी ने मुंह में क्यों नहीं डाला, नहीं कहा जा सकता। लेकिन टिकिया में उसने जरा भी विलम्ब न किया? प्रप्तिमात्रेण भोक्तव्य-- सुकुमारी ने उस जहर की टिकिया को मुंह में डाल लिया।

क्या खाया? अरे क्या खाया? गजब हो गया!...

यह कहती हुई कल्याणी ने कन्या के मुंह में उंगली डाल दी। उसी समय दोनों ने देखा कि विष की डिबिया खाली पड़ी हुई है। सुकुमारी ने सोचा कि यह भी खेल की चीज है, अत: उसने उसे दांतों से दबा लिया और माता का मुंह देखकर मुस्कराने लगी। लेकिन जान पड़ता है, इसी समय जहर का कड़वा स्वाद उसे मालूम पड़ा और उसने मुंह बिगाड़कर खोल दिया- वह टिकिया दांतों में चिपकी हुई थी। माता ने तुरंत निकाल कर उसे जमीन पर

फेंक दिया। लड़की रोने लगी।

टिकिया उसी तरह पड़ी रही। कल्याणी तुरंत नदी-तट पर जाकर अपना आंचल भिगो लाई और लड़की के मुंह में जल देकर उसने धुलवा दिया। बड़ी ही कातर वाणी से कल्याणी ने महेंद्र से पूछा-क्या कुछ पेट में गया होगा?

आनन्दमठ भाग-5

इधर राजधानी की शाही राहों पर बड़ी हलचल उपस्थित हो गई। शोर मचने लगा कि नवाब के यहां से जो खजाना कलकत्ते आ रहा था, संन्यासियों ने मानकर सब छीन लिया। राजाज्ञा से सिपाही और बल्लमटेर संन्यासियों को पकड़ने के लिए छूटे। उस समय दुर्भिज्ञ-पीडित प्रदेश में वास्तविक संन्यासी रह ही न गए थे। कारण, वे लोग भिक्षाजीवी ठहरे, जनता स्वयं खाने को नहीं पाती तो उन्हें वह कैसे दे सकती है? अतएव जो असली संन्यासी भिक्षुक थे, वे लोग पेट की ज्वाला से व्याकुल होकर काशी-प्रयाग चले गए थे। आज ये हलचल देखकर कितनों ने ही अपना संन्यासी वेष त्याग दिया। राज्य के भूखे सैनिक, संन्यासियों को न पाकर घर-घरमें तलाशी लेकर खाने और पेट भरने लगे। केवल सत्यानन्द ने किसी तरह भी अपने गैरिक वस्त्रों का परित्याग न किया।

उसी कल्लोलवाहिनी नदी-तट पर, शाही राह के बगल में पही पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई है। महेंद्र और सत्यानंद परस्पर अलिंगनबद्ध होकर आंसू बहाते हुए भगवन्नाम-उच्चारण में लगे हुए हैं। उसी समय एक जमादार सिपाहियों का दल लिए हुए वहां पहुंच गया। संन्यासी के गले पर एक बारगी हाथ ले जाकर जमादार बोला-यह साला संन्यासी है!

इसी तरह एक दूसरे ने महेंद्र को पकड़ा। कारण, जो संन्यासी का साथी है वह अवश्य संन्यासी होगा। तीसरा एक सैनिक घास पर पड़े हुए कल्याणी के शरीर की तरफ लपका- उसने देखा की औरत मरी हुई है, संन्यासी न होने पर भी हो सकती है। उसने उसे छोड़ दिया। बालिका को भी यही सोच कर उसने छोड़ दिया। इसके बाद उन सबने और कुछ न कहा, तुरंत बांध लिया और ले चले दोनों जन को। कल्याणी की मृत देह और कन्या बिना रक्षक के पेड़ के नीचे पड़ी रही। पहले तो शोक से अभिभूत और ईश्वर के प्रेम में उन्मत्त हुए महेंद्र प्राय: विचेतन अवस्था में थे- क्या हो रहा था, क्या हुआ- इसे वह कुछ समझ न सके। बंधन में भी उन्होंने कोई आपत्ति न की। लेकिन दो-चार कदम अग्रसर होते ही वे समझ गए कि ये सब मुझे बांध लिए जा रहे है- कल्याणी का शरीर पड़ा हुआ है, उसका अंतिम संस्कार नहीं हुआ- कन्या भी पड़ी हुई है। इस अवस्था में उन्हें हिंस्त्र पशु खा जा

सकते हैं। मन में यह भाव आते ही महेंद्र के शरीर में बल आ गया और उन्होंने कलाइयों को मरोड़कर बंधन को तोड़ डाला। फिर पास में चलते जमादार को इस जोर की लात लगायी कि वह लुड़कता हुआ दस हाथ दूर चला गया। तब उन्होंने पास के एक सिपाही को उठाकर फेंका। लेकिन इसी समय पीछे के तीन सिपाहियों ने उन्हें पकड़कर फिर विवश कर दिया। इस पर दु:ख से कातर होकर महेंद्र ने संन्यासी से कहा-आप जरा भी मेरी सहायता करते, तो मैं इन पांचों दुष्टों को यमद्वार भेज देता।

सत्यानंद ने कहा-मेरे इस बूढ़े शरीर में बल ही कहां है? मैं तो जिन्हें बुला रहा हूं, उनके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं है। जो होना है- वह होकर रहेगा, तुम विरोध न करो। हम इन पांचों को पराजित कर न सकेंगे। देखें, ये हमें कहां ले जाते हैं..... भगवान् हर जगह रक्षा करेंगे!

इसके बाद इन लोगों ने मुक्ति की फिर कोई चेष्टा न की, चुपचाप सिपाहियों के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर सत्यानंद ने सिपाहियों से पूछा-बाबा! मैं तो हरिनाम कह रहा था, क्या भगवान का नाम लेने में भी कोई बाधा है? जमादार समझ गया कि सत्यानंद भले आदमी हैं। उसने कहा-तुम भगवान का नाम लो, तुम्हें रोकूंगा नहीं। तुम वृद्ध ब्रह्मचारी हो, शायद तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो जाएगा। मगर यह बदमाश फांसी पर चढ़ेगा!

इसके बाद ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे-

धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।

मा कुरु धनुर्धर गमन विलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी॥.....

इत्यादि।

नगर में पहुंचने पर वे लोग कोतवाल के समीप उपस्थित किए गए। कोतवाल ने नवाब के

पास इत्तिला भेजकर संप्रति उन्हें फाटक के पास की हवालात में रखा। वह कारागार अति भयानक था, जो उसमें जाता था, प्राय: बाहर नहीं निकलता था, क्योंकि कोई विचार करने वाला ही न था। वह अंग्रेजों के जेलखाना नहीं था और न उस समय अंग्रेजों के हाथ में न्याय था। आज कानूनों का युग है- उस समय अनियम के दिन थे। कानून के युग से जरा तुलना तो करो!

रात हो गई। कारागार में कैद सत्यानंद ने महेंद्र से कहा-आज बड़े आनंद का दिन है। कारण, हम लोग कारागार में कैद है। कहो-हरे मुरारे!

महेंद्र ने बड़े कातर स्वर में कहा-हरे मुरारे!

सत्यानंद-कातर क्यों होते हो, बेटे! तुम्हारे इस महाव्रत को ग्रहण करने पर तुम्हें स्त्री-कन्या का त्याग तो करना ही पड़ता, फिर तो कोई संबंध रह न जाता।.....

महेंद्र-त्याग एक बात है, यमदण्ड दूसरी बात! जिस शक्ति के सहारे मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ ही चली गई।

सत्यानंद-शक्ति आएगी- मैं शक्ति हूं! महामंत्र से दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो। महेंद्र ने विरक्त होकर कहा-मेरी स्त्री और कन्या को स्यार और कुत्ते खाते होंगे- मुझसे किसी व्रत की बात न कहिए!

सत्यानंद-इस बारे में चिंता मत करो! संतानों ने तुम्हारी स्त्री की अन्त्येष्टि क्रिया करके तुम्हारी लड़की को उपयुक्त स्थल में रख छोड़ा है।

महेंद्र विस्मित हुए, उन्हें इस बात पर जरा भी विश्वास न हुआ। उन्होंने पूछा-आपने कैसे जाना? आप तो बराबर मेरे साथ हैं।

सत्यानंद-हम महामंत्र से दीक्षित हैं- देवता हमारे प्रति दया करते हैं। आज रात को तुम यह संवाद सुनोगे और आज ही तुम कैदखाने से छूट भी जाओगे।

महेंद्र कुछ न बोला। सत्यानंद ने समझ लिया कि महेंद्र को मेरी बातों का विश्वास नहीं होता। तब सत्यानंद बोले-तुम्हें विश्वास नहीं होता? परीक्षा करके देखो! यह कहकर सत्यानंद कारागार के द्वार तक आए। क्या किया, यह महेंद्र को कुछ मालूम न हुआ, पर यह जान गए कि उन्होंने किसी से बातचीत की है। उनके लौट आने पर महेंद्र ने पूछा-क्या परीक्षा करूं?

सत्यानंद-तुम अभी कारागार से मुक्ति-लाभ करोगे?

उसके यह बात कहते-कहते कारागार का दरवाजा खुल गया। एक व्यक्ति ने घर के भीतर आकर कहा-महेंद्र किसका नाम है?

महेंद्र ने उत्तर दिया-मेरा नाम है।

आगंतुक ने कहा-तुम्हारी रिहाई का हुक्म हुआ है, तुम जा सकते हो।

महेंद्र पहले तो आश्चर्य में आए। फिर सोचा, झूठी बात है। अत: परीक्षार्थ वे बाहर आए।

किसी ने उनकी राह न रोकी। महेंद्र शाही सड़क तक चले गए।

इस अवसर पर आगन्तुक ने सत्यानंद से कहा-महाराज! आप क्यों नहीं जाते? मैं आपके लिए ही आया हूं।

सत्यानंद-तुम कौन हो? गोस्वामी धीरानंद?

धीरानंद -जी हां!

सत्यानंद-प्रहरी कैसे बने?

धीरानंद-भवानन्द ने मुझे भेजा है। मैं नगर में आने के बाद और यह सुनकर कि आप इस कारागार में हैं, अपने साथ धतूरा मिली थोड़ी विजया ले आया था। यहां पहरे पर जो खां साहब थे, वह उसके नशे में जमीन पर पड़े सो रहे हैं। यह जमा-जोड़ा, पकड़ी, भाला जो कुछ मैंने पाया है, यह सब उन्हीं का है।

सत्यानंद-तुम यह सब पहले हुए नगर के बार चले आओ। मैं इस तरह न आऊंगा।

धीरानंद-लेकिन...ऐसा क्यों?

सत्यानंद-आज सन्तान की परीक्षा है।

महेंद्र वापस आ गए। सत्यानंद ने पूछा-वापस क्यों आ गए?

महेंद्र-आप निश्चय ही सिद्ध पुरुष हैं। लेकिन मैं आपका साथ छोड़कर न आऊंगा।

सत्यानंद-ठीक है! हम दोनों ही आज रात दूसरी तरह से बाहर होंगे।

धीरानंद बाहर चले गए। सत्यानंद और महेंद्र कारागार में ही रहे।

जीवानंद बोले-जानती है, आदमियों का शिकार करना ही मेरा काम है। मैंने अनेक आदमियों का शिकार किया है।

अब निमी भी क्रोध में आई। बोली-खूब किया! अपनी पत्नी का त्याग कर दिया और आदमियों की जान ली। क्या समझते हो, इससे मैं मान जाऊंगी? बहुत करोगे मारोगे, लेकिन मैं डरनेवाली नहीं हूं! तुम जिस बाप के लड़के हो, मैं भी उसी बाप की लड़की हूं। आदमियों का खून करने में यदि बड़ाई की बात हो, तो मुझे भी मारकर बड़ाई प्राप्त करो।

जीवानंद हंसकर बोले-अच्छा बुला ला- किस पापिनी को बुलाएगी-जा बुला! लेकिन देख आज के बाद कहेगी तो उस साले के भाई व साले को सिर मुंड़ाकर गदहे पर चढ़ाकर गांव के बाहर निकलवा दूंगा।

निमी ने मन ही मन सोचा-हुई न मेरी जीत यह सोचती हुई वह घर के बाहर निकल गई। इसके बाद पास ही एक झोंपड़ों में वह जा घुसी। कुटी में सैकड़ों पैबन्द लगे हुए कपड़े पहने, रुक्ष-केशी एक युवती बैठी चरखा कात रही थी। निमाई ने जाकर कहा-भाभी! जल्दी

करो। भाभी ने कहा-जल्दी क्या? नन्दोई ने तुझे मारा है, तो उनके सर में तेल मलना है क्या?

निमी-बात ठीक है। घर में तेल है?

उस युवती ने तेल की शीशी सामने खिसका दी। निमाई ने झट अंजली में ऊंड़ेलकर उस युवती के रूखे बालों में लग दिया। इसके बाद झट जूड़ा बांध दिया। फिर चपत जमाकर बोली-तेरी ढाके-वाली साड़ी कहां रखी है, बोल? उस स्त्री ने कुछ आश्चर्य से कहा-क्यों जी! कुछ पागल हो गई हो क्या?

निमाई ने एक मीठा घूंसा जमाकर कहा-निकाल साड़ी जल्दी!

तमाशा देखने के लिए युवती ने भी साड़ी बाहर निकाल दी। तमाशा देखने के लिए क्योंकि इतनी तकलीफ पड़ने के बाद भी उसका सदा प्रफुल्ल रहनेवाला हृदय अभी भी वैसा ही था। नवयोवन-फूले कमल-जैसा उसकी नई उम्र का यौवन-तेल नहीं, सजावट नहीं, आहार नहीं, फिर भी उसी मैली पैबन्दवाली धोती के अंदर से भी वह प्रदीप्त, अनुपमेय सौन्दर्य फूट पड़ता था। वर्ण में छायालोक की चंचलता, नयनों में कटाक्ष, अधरों पर हंसी, हृदय में धैर्य-मेघ में जैसे बिजली, जैसे हृदय में प्रतिमा, जैसे जगत के शब्दों में संगीत और भक्त के मन में आनंद होता है, वैसे ही उस रूप में भी कुछ अनिर्वचनीय गौरव भाग, अनिर्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हंसते-हंसते (लेकिन उस हंसी को किसी ने देखा नहीं) साड़ी निकाल दी। बोली-निमी! भला बात तो, क्या होगी।

निमी बोली-दादा आये हैं। तुझे बुलाया है।

उसने कहा-अगर मुझे बुलाया है तो साड़ी क्या होगी? चल इसी तरह चलूंगी। युवती कहती जाती थी-कभी कपड़े न बदलूंगी। चल, इसी तरह मिलना होगा। आखिर किसी तरह भी उसने कपड़े बदले नहीं। अंत में दोनों कुटी के बाहर आई। निमाई को भी राजी होना पड़ा। निमाई भाभी को लेकर अपने घर के दरवाजे तक आ गई। इसके बाद भाभी को अंदर का उसने दरवाजा बंद कर लिया और स्वयं बाहर खड़ी रही।

ब्रह्मचारी का गाना बहुतों ने सुना। और लोगों के साथ जीवानंद के कानों में भी वह गाना पहुंचा।

महेंद्र की रक्षा में रहने का उन्हें आदेश मिला था- यह पाठकों को शायद याद होगा। राह में एक स्त्री से मुलाकात हो गई। सात दिनों से उसने खाया न था, राह-किनारे पड़ी थी। उसे जीवन-दान देने में जीवानंद को एक घंटे की देर लग गई। स्त्री को बचाकर, विलम्ब होने के कारण उसे गालियां देते हुए जीवानंद आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिए जाते हैं- स्वामीजी गाना गाते हुए चले आ रहे हैं।

\स्धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।.....

जीवानंद महाप्रभु स्वामी के सारे संकेतों को समझते थे।

नदी के किनारे कोई दूसरी स्त्री बिना खाए-पीए तो नहीं पड़ी हुई है? सोच-विचार जीवानंद नदी के किनारे चले। जीवानंद ने देखा था कि ब्रह्मचारी मुसलमानों द्वारा स्वयं गिरफ्तार होकर चले जा रहे हैं। अत: ब्रह्मचारी का उद्धार करना ही जीवानंद का पहला कर्त्तव्य था, लेकिन जीवानंद ने सोचा-इस संकेत का तो अर्थ नहीं है। उनकी जीवनरक्षा से भी बढ़कर है, उनकी आज्ञा का पालन- यही उनकी पहली शिक्षा है। अत: उनकी आज्ञा ही पालन करूंगा।

नदी के किनारे किनारे जीवननंद चले। जाते-जाते उसी पेड़ के नीचे नदी-तट पर देखा कि

एक स्त्री की मृतदेह पड़ी हुई है और एक जीवित कन्या उसके पास है। पाठकों को स्मरण होगा कि महेंद्र की स्त्री-कन्या को जीवानंद ने एक बार भी नहीं देखा था। उन्होंने मन में सोचा- हो सकता है, यही महेंद्र की स्त्री-कन्या हो! क्योंकि प्रभु के साथ ही उन्होंने महेंद्र को देखा था। जो हो, माता मृत और कन्या जीवित है। पहले इनकी रक्षा का प्रयास ही करना चाहिए- अन्यथा बाघ-भालू खा जाएंगे। भवानंद स्वामी भी कहीं पास ही होंगे, वह स्त्री का अंतिम संस्कार करेंगे- यह सोचकर जीवानंद कन्या को गोद में लेकर चल दिए।

लड़की को गोद में लेकर जीवानंद गोस्वामी उसी जंगल में घुसे। जंगल पार कर वे एक छोटे गांव भैरवीपुर में पहुंचे। अब लोग उसे भरूईपुर कहते हैं। भरूईपुर में थोड़े-से सामान्य लोगों की बसती है। पास में और कोई बड़ा गांव भी नहीं है। गांव पार करते ही फिर जंगल मिलता है। चारों तरफ जंगल और बीच में वह छोटा गांव है। लेकिन गांव है। बड़ा सुंदर। कोमल तृण से भरी हुई गोचर भूमि है, कोमल श्यामल पल्लवयुक्त आम, कटहल, जामुन, ताड़ आदि के बगीचे हैं। बीच में नील-स्वच्छ जल से परिपूर्ण तालाब है। जल में बक, हंस, डाहुक आदि पक्षी, तट पर पपीहा, कोयल, चक्रवाक है, कुछ दूर पर मोर पंख फैलाकर नाच रहे हैं। घर-घर के आंगन में गाय, बछड़े, बैल हैं। लेकिन आजकल गांव में धान नहीं है। किसी के दरवाजे पर पिंजड़े में तोता है, तो किसी के यहां मैना। भूमि लिपी-पोती स्वच्छ है। मनुष्य प्राय: सभी दुर्भिक्ष के कारण दुर्बल, कलांत और मलीन दिखाई देते हैं, फिर भी ग्रामवासियों में श्री है। जंगल में अनेक तरह के जंगली खाद्य पैदा होते हैं। अत: गांव के लोग वहां से फल-फूल लाते हैं और वही खाकर इस दुर्भिक्ष में भी अपने प्राण बचाए हुए हैं।

एक बड़े आम के बगीचे के बीच एक छोटा-सा घर है। चारों तरफ मिट्टी की चहारदीवारी है और चारों कोनों पर एक-एक कमरा है। गृहस्थ के पास गौ-बकरी है, एक मोर है, एक मैना है, एक तोता है। एक बंदर भी था, लेकिन उसे खाना न मिलने के कारण छोड़ दिया गया है। धान कू टने की एक ढेंकी है। बाहर बैल बंधे हैं, बगल में नींबू का पेड़ है। मालती जूही की लताएं हैं- अर्थात् गृहस्थ सुरुचि-सम्पन्न है। लेकिन घर में प्राणी अधिक नहीं है। जीवानंद कन्या को लिए हुए घर में चले गए।

निमी कन्या को गोद में लिए हुए खाना परोसने में व्यस्त हो गई। पहले उसने जगह पानी से धो-पोंछ दी इसके बाद पीढ़ा-पानी रखकर एक थाली में भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, रोहू मछली का रसा और दूध लाकर रख दिया। खाने के लिए बैठकर जीवानंद ने कहा-निमाई बहन! कौन कहता है कि देश में अकाल है? तेरे गांव में शायद अकाल घुसा ही नहीं!

निमी बोली-भला अकाल क्यों न होगा- भयंकर अकाल है! हमलोग दो ही प्राणी तो हैं, बहुत कुछ है, दे-दिलाकर भी भगवान एक मुट्ठी चना ही देते हैं। हमलोगों के गांव में पानी बरसा था- याद नहीं है- तुम्हीं तो कह गए थे कि वन में पानी बरस रहा है, यहां भी बरसेगा! इसलिए हमारे गांव में धान हो गया। गांववाले और लोग तो शहर में चावल बेच आए, हमलोगों ने नहीं बेचा।

जीवानंद ने पूछा-जीजाजी कहां हैं?

निमी ने गर्दन टेढ़ी कर कहा-दो-तीन सेर चावल बांधकर क्या जाने किसको देने गए हैं। किसी ने चावल मांगा था।

इधर जीवानंद के भाग्य में ऐसा भोजन कभी मिला न था। व्यर्थ बातचीत में समय न गंवाकर जीवानंद दनादन गपागप-सपासप आवाज करते हुए क्षण भर में सारा भोजन उदरस्थ कर गए। श्रीमती निमाई मणि ने केवल अपने और पति के लिए पकाया था, अपना हिस्सा उसने भाई को खिला दिया था, थाली सूनी देखकर शर्म से अपने पति का हिस्सा लाकर थाली में डाल दिया। जीवानंद ने सब ख्याल छोड़कर उस स्वादिष्ट भोजन को भी उदर नामक महागर्त में भर लिया। अब निमाई ने पूछा-दादा! और कुछ खाओगे?

जीवानंद ने डकार लेते हुए कहा-और क्या है?

निमाई बोली-एक पक्का कटहल है।

निमाई ने कटहल भी ला रखा। विशेष कोई आपत्ति न कर जीवानंद गोस्वामी ने उसे भी ध्वंसपुर भेज दिया। अब हंसकर निमाई ने पूछा-दादा! और कुछ नहीं?

दादा ने कहा-अब रहने दे फिर किसी दिन आकर खाऊंगा।

अंत में निमाई ने दादा को हाथ-मुंह धोने को पानी दिया। जल ढालते हुए निमाई ने पूछा-दादा! मेरी एक बात रख लोगे?

जीवानंद-क्या?

निमाई-तुम्हें मेरी कसम!

जीवानंद-अरे बोल न कलमुंही

निमाई-बात रक्खोगे?

जीवानंद-अरे पहले बता भी तो सही।

निमाई-तुम्हें मेरी कसम, हाथ जोड़ती हूं।

जीवानंद-अरे बाबा मंजूर है! बता तो सही, क्या कहती है?

अब निमाई गर्दन टेढ़ी कर एक हाथ से दूसरे हाथ की ऊंगली तोड़ती हुई, शर्माती हुई, कभी नीचे जमीन देखती हुई बोली- एक बार भाभी को बुला दूं, मुलाकात कर लो।

जीवानंद ने हाथ धुलाने वाले लोटे को निमी पर मारने के लिए उठाया, फिर बोले-लौटा दे, मेरी लड़की! तेरा अन भी किसी दिन वापस कर जाऊंगा। तू बंदरी है, कलमुंही है। तुझे जो बात न कहनी चाहिए, वही बात मेरे सामने कहती है।

निमी बोली-अच्छा मैं ऐसी ही सही पर भैया! एक बार कह दो, मैं भाभी को बुला लाऊं।

जीवानंद-तो लो मैं जाता हूं।

यह कहकर जीवानंद उठकर द्वार की तरफ बढ़े। किंतु शीघ्रता-पूर्वक निमाई ने दौड़कर किवाड़ बंद कर दिए और स्वयं किवाड़ से लगकर खड़ी हो गई। बोली-मुझे मारकर ही बाहर जा सकते हो, भैया! आज भाभी से बिना मुलाकात किए जाने न पाओगे।

उस स्त्री की उम्र यही कोई पच्चीस वर्ष के लगभग है, लेकिन देखने में निमाई से अधिक उम्र की नहीं जान पड़ती। मैले पैबंद की धोती पहनकर भी, जब वह घर में घुसी तो जान पड़ा कि जैसे घर में उजाला हो गया। जान पड़ा, जैसे बहुतेरी कलियों का गुच्छा पत्तों से ढंका रहने पर भी, पत्ते हटते ही खिल उठा हो मानो गुलाब-जल की शीशी एकाएक मुंह खुल जाने से महक गयी हो-सुलगती हुई आग में जैसे किसी ने धूप-धूना छोड़ दिया हो और कमरे का वातावरण ही बदल जाए। पहले तो घर में घुसकर स्त्री ने पति को देखा नहीं, फिर एकाएक निगाह पड़ी कि आंगन में लगे छोटे आम के नीचे खड़े होकर जीवानंद रो रहे हैं। सुंदरी ने धीर-धीरे उनके पास पहुंचकर उनका हाथ पकड़ लिया। यह कहना भूल गया कि उनकी आंखों में जल नहीं आया। भगवान ही जानते हैं कि उसकी आंखों से आंसू की वह धारा निकलती कि शायद जीवानंद उसमें डूब जाते। लेकिन युवती ने अपनी आंखों में आंसू नहीं आने दिए। जीवानंद का हाथ पकड़कर उसने कहा-छि:! छि:! रोते क्यों हो? मैं समझी कि तुम मेरे लिए रोते हो। मेरे लिए न रोना! तुमने मुझे जिस तरह रखा है, मैं उसी में सुखी हूं।

जीवानंद ने माथ उठाकर आंसू पोंछते हुए स्त्री से पूछा-शंति! तुम्हारे शरीर पर यह सैकड़ों पैबन्द की धोती क्यों है? तुम्हें तो खाने-पहनने की कोई तकलीफ नहीं है! शांति ने कहा-तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है? रुपये लेकर क्या करना चाहिए, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे- जब तुम मुझे ग्रहण करोगे... जीवानंद-ग्रहण करूंगा-शांति! मैंने क्या तुम्हें त्याग दिया है? शांति-त्याग नहीं, जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा, जब तुम फिर मुझे प्यार करोगे.... बात समाप्त होने के पहले ही जीवानंद ने शांति के छाती से लगा लिया और उसके कंधों पर माथा रख बहुत देर तक चुप रहे। इसके बाद एक ठंडी सांस लेकर बोले-क्यों मुलाकात की?

शांति -क्या तुम्हारा व्रत भंग हो गया?

जीवानंद-हो व्रत भंग, उसका प्रायश्चित भी है। उसके लिए शोक नहीं है। लेकिन तुम्हें

देखकर तो फिर लौटते नहीं बन पड़ता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सारा संसार, व्रत-होम, योग-यज्ञ यह सब एक तरफ है और दूसरी तरफ तुम हो। मैं किसी तरह भी समझ नहीं पाता हूं कि कौन-सा पलड़ा भारी है? देश तो अशांत है, मैं देश लेकर क्या करूंगा। तुम्हारे साथ एक बीघा भूमि लेकर भी बड़े आनंद से मेरा जीवन बीत सकता है। तुम्हें लेकर मैं स्वर्ग गढ़ सकता हूं। क्या करना है मुझे देश लेकर? देश की उस संतान का अभाग्य है जो तुम्हारी जैसी गृहलक्ष्मी प्राप्त कर भी सुखी हो न सके। मुझसे बढ़कर देश में कौन दु:खी होगा? तुम्हारे शरीर पर ऐसा कपड़ा देखकर मुझे लोग देश में सबसे दरिद्र ही समझेंगे। मेरे सारे धर्मो की सहायता तो तुम हो उसके सामने फिर सनातन-धर्म क्या है? मैं किस धर्म के लिए देश-देश, वन-वन बंदूक कंधे पर लेकर प्राणी-हत्या कर इस पाप का भार संग्रह करूं? पृथ्वी संतानों की होगी या नहीं, कौन जानता है? लेकिन तुम मेरी हो- तुम पृथ्वी से भी बड़ी हो- तुम्हीं मेरा स्वर्ग हो। चलो घर चलें, अब वापस न जाऊंगा!

शांति कुछ देर तक बोल न सकी। इसके बाद बोली-छी:! तुम वीर हो-मुझे इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा सुख यही है कि मैं वीर-पत्नी हूं! तुम अधम स्त्री के लिए वीर-धर्म का परित्याग करोगे? तुम अपने वीर-धर्म का कभी परित्याग न करना! देखो मुझे एक बात बताते जाओ, इस व्रत के भंग का प्रायश्चित क्या है?

जीवानंद ने कहा-प्रायश्चित है-दान, उपवास-12 कानी कौडियां।

शांति मुस्कराई और बोली-जो प्रायश्चित हैं मैं जानती हूं। लेकिन एक अपराध पर जो प्रायश्चित है- वही क्या शत अपराधों पर भी है?

जीवानंद ने विस्मित और विवश होकर कहा-लेकिन यह सब क्यों पूछती हो?

शांति-एक भिक्षा है। कहो- मेरे साथ बिना मुलाकात किए प्रायश्चित न करोगे!

जीवानंद हंसकर कहा-इस बारे में निश्चित रहो- बिना तुम्हें देखे, मैं न मरूंगा। मरने की ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है। अब मैं अधिक यहां न ठहरूंगा, लेकिन आंख भरकर तुम्हें देख न सका। फिर भी एक दिन अवश्य देखूंगा। एक दिन हम लोगों के मन की कामना जरूर पूरी होगी! मैं अब चला तुम मेरे एक अनुरोध की रक्षा करना- इस वेश-भूषा का त्याग कर दो। मेरे पैतृक मकान में जाकर रहो।

शांति ने पूछा-इस समय कहां जाओगे?

जीवानंद-इस समय मठ में ब्रह्मचारीजी की खोज में जाऊंगा। वे जिस भाव से नगर गए हैं, उससे कुछ चिंता होती है। मठ में मुलाकात न हुई तो नगर जाऊंगा।

घर में पहुंचते ही जीवानंद ने आंगन के ओसरे में रखे को उठा लिया और भनन्-भनन् उसे चलाने लगे। छोटी लड़की ने चरखे की आवाज कभी सुनी न थी। विशेषत: माता के छूटने के बाद से वह रो रही थी। चरखे की आवाज सुनकर वह भयभीत हो और सप्तम स्वर में गला ऊंचा कर रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर एक कमरे से सत्रह-अठारह वर्ष की युवती बाहर आई। युवती बाएं बाएं हाथ पर बायां गाल रखे, गर्दन झुकाए ही खड़ी होकर देखने लगी। बोली-यह क्या दादा! चरखा क्यों कात रहे हो? यह लड़की कहां से पायी दादा? तुम्हें लड़की हुई है क्या? दूसरी शादी की है क्या?

जीवानंद उठे और लड़की को उसकी गोद में देकर चपत मारते चले। बोले-बंदरी कहीं की! मुझे रंडुआ-भंडुआ समझ लिया है क्या? घर में दुध है?

इस पर युवती ने कहा-भला दूध क्यों न होगा? आऊं पियोगे

जीवानंद ने कहा-हां पिऊंगा!

व्यवस्त होकर युवती घर में दूध गरम करने लगी। तब तक जीवानंद बैठकर चरखा कातने लगे। लड़की ने युवती की गोद में जाकर रोना बंद कर दिया था। उसने क्या समझा, नहीं कहा जा सकता। शायद इस युवती को खिले पुष्प देखकर सोचा हे, कि यही मेरी मां है। वह केवल एक बार रोई, वह भी शायद आग की आंच खाकर। लड़की का रोना सुनकर जीवानंद ने आवाज लगाई-अरे निमी! अरी कलमुहीं बंदरी! तेरा दूध गरम नहीं हुआ क्या? उसने भी कहा-हो गया। यह कहकर वह एक पथरी में दूध ढालकर जीवानंद के पास लाकर रख बैठ गई। जीवानंद ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा-मन करता है, यही गरम दूध की पथरी तेरे ऊपर उंडेल दूं। तूने क्या समझा कि मैं पियूंगा?

निमी ने पूछा-तब कौन पिएगा?

जीवानंद-यह लड़की पिएगी। देखती नहीं, अभी दूध पीनेवाली निरी बच्ची है!

यह सुनकर निमी पलथी मारकर कन्या को गोद में लेकर चम्मच से दूध पिलाने बैठी। एकाएक उसकी आंखों से कई बूंद आंसू लुढ़क पड़े। बात यह थी कि उसे पहले एक बालक हुआ था, जो मर गया था। उसे इस तरह दूध पिलाने में अपने बच्चे की याद आ गई।

निमी ने तुरंत अपने आंसू पोंछकर हंसते-हंसते जीवानंद से पूछा-हैं दादा! बताओ, यह किसकी लड़की है?

जीवानंद ने कहा-अरी बंदरी! तुझे क्या पड़ी है?

निमी ने कहा-लड़की मुझे दोगे?

जीवानंद-तू लेकर क्या करेगी?

निमी-मैं लड़की को दूध पिलाऊंगी, गोद में लेकर खिलाऊंगी, बड़ी करूंगी।

कहते-कहते निमी की आंखों से आंसू ढुलक पड़े। आंसू पोंछकर वह फिर दांत निकालकर हंसने लगी। जीवानंद ने कहा-तू लेकर क्या करोगी? तुझे आप ही कितने बाल-बच्चे होंगे।

निमी-जब होंगे तब होंगे। अभी इस लड़की को मुझे दे दो! न हो, बाद में फिर ले जाना।

जीवानंद-तो ले ले, लेकर मर! मैं बीच-बीच में आकर देख जाया करूंगा। यह कायस्थ की लड़की है। मैं अब चला..।

निमी-वाह दादा! भला खाओगे नहीं? समय हो गया, तुम्हें मेरी कसम, खाकर तब जाना।

जीवानंद-तेरी कसम टालकर तुझे खाऊं, या भात खाऊं! फिर बोले-रहने दे, तुझे न खाऊंगा, भात ही खाऊंगा, ला भात!

भवानंद मठ में बैठे हुए हरिगान में तल्लीन थे, ऐसे ही समय दु:खी चेहरे से ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी संतान उनके पास आ पहुंचे। भवानंद ने कहा-गोस्वामी! चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है?

ज्ञानानंद ने कहा-कुछ गड़बड़ी जान पड़ती है। कल के कांड से सरकारी आदमी जिसे हल्दी-गेरुआ वस्त्रधारी देखते हैं, उसे गिरफ्तार कर लेते हैं। करीब-करीब सभी संतानों ने आज अपना गैरिक वस्त्र उतार दिया है। केवल सत्यानंद प्रभु गेरुवा पहने हुए ही शहर की तरफ गए हैं। कौन जाने कहीं मुसलमानों के हथ पड़ जाए! भवानंद बोले-उन्हें बंदी कर रखे, बंगाल में अभी ऐसा कोई मुसलमान नहीं है। मैं जानता हूं, धीरानंद उसके पीछे-पीछे गए हैं। फिर भी मैं एक बार नगर घूमने जाता हूं, मठ की रक्षा तुम्हें सौंप जाता हूं।

यह कहकर भवानंद स्वामी ने एक अलग कोठरी में जाकर कितने ही तरह के कपड़े निकाले। भवानंद जब उस कोठरी से निकले तो उन्हें पहचानना कठिन था। गेरुआ वस्त्रों के बदले इनके पैरों में चूड़ीदार पायजामा, शरीर पर अचकन, माथे पर कंगूरेदार पगड़ी और पैरों में नागौरी जूता था। अब उनके ललाट पर का चंदन-त्रिपुण्ड साफ हो गया था, उनका चेहरा अपूर्व शोभा पा रहा था। उन्हें देखने से किसी पठान जातीय मुसलमान का ही भान होता था। इस तरह से सशस्त्र होकर भवानंद मठ के बाहर हुए। मठ के कोई एक कोस उत्तर दो छोटी पहाडियां बगल-बगल में थीं। पहाड़ी जंगल से भरी हुई थी। वहीं एक निर्जन स्थान में संस्थानों की अश्वशाला थी। भवानंद ने वहां से एक घोड़ा निकाला और जीन आदि कसवाकर उस पर सवार हो, सीधे राजधानी की तरफ चल पड़े।

जाते-जाते एकाएक उनकी गति में बधा पड़ी। उसी राह की बगल में नदी के किनारे वृक्ष के नीचे उन्होंने आकाश से गिरी बिजली की तरह दीप्तिमान एक स्त्री को पड़ी हुई देखा। उन्होंने देखा, उसमें जीवन के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते- विष की खाली डिबिया पास में पड़ी हुई है। भवानंद विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। जीवानंद की तरह भवानंद ने भी

महेंद्र की स्त्री-कन्या हो सकती है, भवानंद के सामने संदेह के लिए वे कारण भी न थे- उन्होंने ब्रह्मचारी और महेंद्र को बंदी रूप में ले जाते भी देखा न था। कन्या भी वहां न थी। केवल डिबिया देखकर उन्होंने समझा कि इस स्त्री ने विष खाकर आत्म-हत्या की है। भवानंद उस शव के पास बैठ गए, बैठकर उसके माथे पर हाथ रखकर बहुत देर तक परीक्षा करते रहे। नाड़ी-परीक्षा, हृदय-परीक्षा आदि अनेक प्रकार से और दूसरे अपरिज्ञात तरीकों से परीक्षा कर मन-ही-मन कहा-अभी मरी नहीं है-अभी भी समय है- बचाई जा सकती है। लेकिन बचाकर करना भी क्या है? इस तरह कुछ क्षण तक विचार करते रहे और इसके बाद वे उठकर एकाएक वन के अंदर चले गए। वहां से वे एक लता की थोड़ी पत्ती तोड़ लाए। उसी पत्ती को हथेली पर मसलकर उन्होंने रस निकाला और अंगुलियों से दांत खोल रस को मुंह में टपकाया कान में डाला और थोड़ा मस्तक पर मल दिया। इसके बाद थोड़ा रस उन्होंने नाक में भी डाल दिया। इसी तरह उन्होंने बार-बार किया और बीच-बीच में नाक के पास हाथ ले जाकर देखते जाते थे कि कुछ श्वास चली या नहीं। पहले-पहल तो भवानंद को निराशा होने लगी, लेकिन इसके बाद उनका मुंह प्रसन्नता से खिल उठा- अंगुली में निश्वास की हलकी अनुभूति हुई। उत्साहित हो उन्होंने बारम्बार वही प्रक्रिया की, अब श्वास मजे में आने-जाने लगी। नाड़ी देखी चल रही थी। इसके बाद ही क्रमश: प्रभात-कालीन अरुणोदय की तरह, प्रभात के समय कमल खिलने की तरह, प्रथम प्रेमानुभव की तरह कल्याणी अपनी आंखें खोलने लगी। यह देखकर भवानंद ने कल्याणी के अर्धजीवित शरीर को घोड़े पर रखा और स्वयं पैदल ही नगर की तरफ निकल गए।

आनन्दमठ भाग-6

संध्या होने के पहले ही सन्तान सम्प्रदाय के सभी लोगों ने यह जान लिया कि महेन्द्र के साथ सत्यानन्द स्वामी गिरफ्तार होकर नगर की जेल में बन्द है। इसके बाद ही एक एक दो-दो दस-दस सौ-सौ हजार-हजार की संख्या में आकर संतानगण उसी मठ की चहारदीवारी से संलग्न वन में एकत्रित होने लगे। सभी सशस्त्र थे। सबकी आंखों से क्रोध की अग्नि निकल रही थी, चेहरे पर दृढ़ता और होठों पर प्रतिज्ञा थी। उन लोगों के काफी संख्या में जुट जाने पर मठ के फाटक पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए स्वामी ज्ञानानन्द ने गगन भेदी स्वर में कहा- अनेक दिनों से हम लोग विचार करते आते है कि इस नवाब का महल तोड़कर यवनपुरी का नाश कर नदी के जल में डुबा देंगे- इन सूअरों के दांत तोड़कर इन्हें आग में जलाकर माता वसुमती का उद्धार करेंगे। भाइयों! आज वही दिन आ गया है। हम लोगों के गुरू के भी गुरू परमगुरु जो अनन्त ज्ञानमय सदा शुद्धाचारी, लोकहितैषी और देश हितैषी हैं- जिन्होंने सनातन धर्म की पुन: प्रतिष्ठा के लिए आमरणव्रत लिया है,प्रतिज्ञा की है- जिन्हें हम विष्णु के अवतार के रूप में मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के आधार हैं- वही आज म्लेच्छ मुसलमानों के कारागार में बन्दी है। क्या हम लोगों की तलवार पर धार नहीं है?

बांह फैलाकर ज्ञानान्द ने कहा-इन बाहुओं में क्या बल नही है? छाती ठोकर बोले- क्या इस हृदय में साहस नहीं? भाइयों! बोलो-हरे मुरारे मधुकैटभारे! जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है जिन्होनंने हिरण्यकशिपु, कंस,दन्तवक्र,शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों का निधन-साधन किया है, जिनके चक्र के प्रचण्ड निर्घोष से मृत्युंजय शंकर भी भयभीत हुए थे जो अजेय है रण में विजयदाता हैं हम उन्हीं के उपासक है, उनके ही बल से हमारी भुजाओं में अनन्त बल है- वह इच्छामय है उनके इच्छा करते ही हम रण- विजयी होंगे। चलो, हम लोग उस यवनपुरी का निर्दलन कर उसे धूलि में मिला दे। उरा शूकर निवास को अग्नि से शुद्ध कर नदी-जल में धो दे, उसका जर्रा जर्रा उड़ा दें। बोलो- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

इसके साथ ही उस कानन में भीषण, आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

इसके साथ ही उस कानन में भीषण आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

सहस्त्रों कंठों के निर्घोष से आकाश कांपा, वसुन्धरा डगमगायी। सहस्त्रों बाहुओं के घर्षण से असीम निनाद हुआ- हजारों ढालों की आवाज से कानों के पर्दे फटने लगे। कोलाहल करते हुए पशु पक्षी जंगल से निकलकर भागे। इस तरह जंगल से श्रेणीबद्ध शिक्षित सेना की तरह सन्तानगण निकल पड़े। वह लोग मुंह से हरिनाम कहते हुए, मिलित पद- विक्षेप से नगर की तरफ चले। उस अंधेरी रात में पतों का मर्मर शब्द, अस्त्रों की झनकार, कण्ठों का अस्फुट स्वर, बीच बीच में तुमुल स्वर में हरिनाम का जयघोष! धीरे-धीरे, तेजस्वितापूर्वक सरोष सन्तान-वाहिनी ने नगर में आकर नगर को त्रस्त कर दिया। इस अकस्मात ब्रजाघात से नागरिक कहां किधर भागे, पता न लगा। नगर- रक्षक हतबुद्धि हो निश्चेष्ट हो गये।

इधर सन्तानों ने पहुंचते ही पहले राजकारागार में पहुंचकर उसे तोड़ डाला, रक्षकों को चटनी बना दिया और सत्यानन्द तथा महेन्द्र को मुक्त कर कन्धों पर चढ़ाकर संतानगण आनंद से नृत्य करने लगे। हरिकीर्तन का अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। महेन्द्र और सत्यानंद करे मुक्त कर संतानों ने जहां-जहां मुसलमानों का घर पाया, आग लगा दी। यह देखकर सत्यानंद ने कहा-अनर्थक अनिष्ट की आवश्यकता नहीं। चलो, लौट चलो। नगर के अधिकारियों ने संतानों का यह उपद्रव सुनकर सिपाहियों का एक दल उनके दमन के लिए भेज दिया। उनके पास केवल बंदूकें ही नहीं थी। एक तोप भी साथ में थी। यह खबर पाते ही सन्तानगण आनन्द कानन से पलट पड़े, लेकिन लाठी,तलवार और छुरों से क्या हो सकता है? तोप के सामने ये लोग पराजित होकर भाग गये।

शान्ति को बहुत थोड़ी ही उम्र में,बचपन में ही मातृवियोग हो गया था। जिन उपादानों से शान्ति का चरित्र-गठन हुआ है, उनमें एक यह प्रधान है। उसके पिता एक ब्राह्मण अध्यापक थे। उनके घर में और कोई स्त्री न थी।

शान्ति के पिता जब पाठशाला में बालकों को पढ़ाते थे, तो स्वभावत: उनकी बगल में

शांति भी आकर बैठती थी। कितने ही छात्र तो पाठशाला में ही रहते थे; अन्य समय में शांति भी उन्हीं में मिलकर खेला करती थी। कभी उनकी पीठ पर चढ़ती थी, कभी गोद में बैठ खेला करती थी। वे लोग भी शान्ति का आदर करते थे।

इस तरह बचपन से ही पुरुष-साहचर्य का प्रथम प्रतिफल तो यह हुआ कि शान्ति ने लड़कियों की तरह कपड़े पहनना सीखा, या सीखा भी तो वह ढंग परित्याग कर दिया- लड़कों की तरह कछाड़ा मारकर धोती पहनने लगी। अगर कोई उसे लड़कियों की तरह कपड़े पहना देता था, तो वह तुरंत उसे खोल देती थी और फिर कछाड़ा मारकर पहन लेती थी। पाठशाला के बालक कभी जूड़ा बांधते न थे, अत: वह न तो चोटी करती थी और न जूड़ा ही। फिर उसे जूड़ा बांध ही कौन देता? घर में कोई औरत तो थी नहीं। पाठशाला के छात्र बांस की फर्राटी में उसके बाल फंसा देते थे और उसके घुंघराले बाल वैसे ही पीठ पर लहराया करते थे। विद्यार्थी ललाट पर चन्दन और भस्म लगाते थे; अत: शान्ति भी चन्दन-भस्म लगाया करती थी। गले में यज्ञोपवीत पहनने के लिए भी शांति बहुत रोया करती थी। फिर भी, संध्यादि नैमित्तिक नियमों के समय वह अवश्य उनके पास बैठकर उनका अनुकरण किया करती थी। अध्यापक की अनुपस्थिति के समय लड़कों ने उसे अश्लील दो-एक संकेत सिखा दिये थे और वे आपस में जो कहानियां कहा करते थे, तोते की तरह शान्ति ने भी उन्हें रट डाला था- भले ही उसका कोई अर्थ न जानती हो।

दूसरा फल यह हुआ कि बड़ी पर शान्ति, लड़के जो पुस्तकें पढ़ा करते थे- उन्हें अनायास ही पड़ने लगी। वह व्याकरण का एक अक्षर भी जानती न थी, लेकिन भट्टि काव्य, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषधादि के श्लोक व्याख्या के साथ उसने रट डाले थे। यह देखकर शान्ति के पिता ने उसे थोड़ा प्राथमिक व्याकरण भी पढ़ाना शुरू किया। शान्ति भी शीघ्र से शीघ्र सीखने लगी। अध्यापक भी बड़े विस्मित हुए। व्याकरण के साथ उन्होंने कुछ साहित्य भी उसे पढ़ाया। इसके बाद ही सब गोलमाल हो गया, शान्ति के पिता का स्वर्गवास हो गया।

अब शान्ति निराश्रय हो गयी। पाठशाला भी उठ गयी, छात्र चले गये। लेकिन वे सब शान्ति को प्यार करते थे, अत: उनमें से एक शान्ति को अपने घर ले गया। इसी छात्र ने बाद में सन्तान-सप्रदाय में नाम लिखाकर अपना नाम जीवानन्द रखा। हम उन्हें जीवानन्द ही कहेंगे।

उस समय जीवानन्द के माता-पिता जीवित थे। उनको जीवानन्द ने कन्या का विशेष

परिचय दिया। पिता-माता ने पूछा- लेकिन अब परायी लड़की का भार अपने ऊपर लेगा कौन? जीवानन्द ने कहा- मै ले आया हूं, इसका भार मै ही लूंगा! माता-पिता ने भी कहा - ठीक है। जीवानन्द कुंवारे थे, उन्होंने शान्ति के साथ शादी कर ली। विवाह के उपरान्त सभी लोग इस सम्बन्ध पर पछताने लगे। सब लोग समझे- तो ठीक नहीं हुआ। शांति ने किसी तरह भी लड़कियों के समान धोती न पहनी, किसी तरह भी वह चोटी बांधने को तैयार न हुई। वह घर में भी अधिक रहती न थी, पड़ोस के लड़कों के साथ बाहर खेला करती थी। जीवानन्द के घर के पास ही जंगल है। शांति उस जंगल में अकेली घुसकर कहीं मोरों, कहीं हरिणों और कहीं सुंदर फूलों की खोज में घूमा करती थी। सास- ससुर ने पहले तो मना किया, फिर डांट-फटकार की, इसके बाद मारा- पीटा और अन्त में कोठरी में बन्द कर दिया। इस डॉट- डपट से शांति बड़ी क्रु द्ध हुई। एक दिन दरवाजा खुला देखकर वह बाहर निकली और बिना किसी से कहे-सुने कहीं चली गयी।

जंगल के अन्दर टेसू के फूलों को लेकर उनसे शांति ने अपने कपड़े रंग डाले और खासी साधुनी बन गयी। उस समय बंगाल में दल के दल संन्यासी घूमा करते थे। शांति भी भिक्षा मांगती-खाती जगन्नाथ क्षेत्र की राह में निकल गयी। थोड़े ही दिनों बाद उसे संन्यासियों का दल मिल गया; वह भी उन्हीं में मिल गयी।

उस समय के सन्यासी आजकल जैसे न होते थे- सुशिक्षित बलिष्ट युद्ध विशारद एवं अन्यान्य गुणों से गुणवान होते थे। वे लोग वस्तुत: एक तरह के राजविद्रोही होते थे- राजाओं का राजस्व लूटकर खाते थे। बलिष्ट बालक पाते ही उनका अपहरण करते थे, उन्हें शिक्षित कर अपने सम्प्रदाय में मिला लिया करते थे। इसलिए लोग उन्हें लकड़-पकड़वा या लकड़ सुँघवा भी कहते थे।

शांति बालक संन्यासी के रूप में उनमें मिली थी। संन्यासी लोग पहले कोमल देह देखकर उसे दल में मिलाते न थे; लेकिन शांति की बुद्धि-प्रखरता,चतुरता और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक उन्होंने उसे अपने दल में मिला लिया। शांति उनके दल में मिलकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी, अत: परिश्रम-सहिष्णु हो उठी। उनके साथ उसने देश- विदेश का भ्रमण किया, अनेक लड़ाइयां देखी और अस्त्र-विद्या में निपुण हो गयी।

क्रमश: उसके यौवन के लक्षण प्रकट होने लगे। अनेक संन्यासियों ने जान लिया कि यह छद्मवेश में स्त्री है। लेकिन अधिकतर संन्यासी उस समय जितेन्द्रिय होते थे, इसलिये

किसी ने ध्यान न दिया।

संन्यासियों में अनेक विद्वान भी थे। शांति को संस्कृत में कुछ ज्ञान है, यह देखकर एक संन्यासी उसे पढ़ाने लगा-लेकिन क्या काबुल में गधे नहीं होते? जितेन्द्रिय संन्यासियों में वह संन्यासी कुछ दूसरे ढंग का था। या हो सकता है कि शांति का अभिनव यौवन-सन्दर्भ देखकर वह संन्यासी अपनी इन्द्रियों द्वारा परिपीडित होकर अपने को वश में न रख सका हो। अत: वह अपनी शिष्या को श्रृंगार रस के काव्य पढ़ाने लगा और उनकी व्याख्या खोलकर अश्राव्य रूप में सुनाने लगा। उससे शान्ति का अपकार न होकर कुछ उपकार ही हुआ। लज्ञा किसे कहते हैं, शान्ति ने यह सीखा ही न था; अब व्याख्या सुनकर स्त्री-स्वभाववश स्वत: उसमें लज्ञा का उदय हुआ। पुरुषचरित के ऊपर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा उस पर छा गयी-उसने शान्ति के गुणों को समाधिक बढ़ा ही दिया। शान्ति ने पढ़ना छोड़ दिया।

सत्यानंद-महेन्द्र से मैंने ऐसा ही सुना है। अब संध्या समय उपस्थित है, मैं संध्यादि कृत्य के लिए जाता हूं। इसके बाद नये सन्तानों की दीक्षा की व्यवस्था करूंगा।

भवानंद-सन्तानों की? क्या महेन्द्र के अतिरिक्त और भी कोई सन्तान-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुआ चाहता है?

सत्यानंद-हां, एक और नय आदमी है। अब से पहले मैने उसे कहीं देखा नहीं था। आज ही मेरे पास आया है। वह बहुत कोमल युवा पुरुष है। उसकी भाव-भंगी और बातों से मैं बहुत प्रसन्न हूं- खरा सोना जान पड़ता है वह! उसके संतान- कार्य की शिक्षा का भार जीवानंद पर है। जीवानन्द लोगों को चित्त-आकर्षण कर लेने में बहुत पटु है।.. अब मै जाऊंगा। तुम लोगों के प्रति मेरा एक उपदेश बाकी है। बहुत मन लगाकर उसे सुनो!

दोनों ही शिष्यों ने करबद्ध हो निवेदन किया-आज्ञा दीजिये।

सत्यानन्द ने कहा-तुम दोनों से यदि कोई अपराध हुआ हो, या आगे करो, तो मेरे वापस आ जाने के पहले प्रायश्चित न करना। मेरे आ जाने पर अवश्य ही प्रायश्चित करना होगा।

यह कहकर सत्यानन्द स्वामी अपने स्थान पर चले गये। भवानन्द और जीवानन्द ने एक-दूसरे का मुंह ताका।

भवानन्द ने पूछा-तुम्हारे ऊपर इशारा है क्या?

जीवानन्द-जान तो पड़ता है! बहन के घर में कन्या को पहुंचाने गया था।

भवानन्द-इसमें क्या दोष है? यह तो निषिद्धि नहीं है! ब्राह्मणी के साथ मुलाकात तो नहीं की है?

जीवानन्द-जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही समझते हैं?

(4)

सायंकृत्य समाप्त करने के उपरान्त सत्यानन्द स्वामी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा-तुम्हारी कन्या जीवित है।

महेन्द्र-कहां है महाराज?

सत्यानन्द-तु मुझे महाराज क्यों कहते हो?

महेन्द्र-सब यह कहते हैं, इसलिए। मठ के अधिकारियों को भी राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता है। मेरी कन्या कहां है, महाराज?

सत्यानन्द-इसे सुनने के पहले एक बात का ठीक उत्तर दो- तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करोगे?

महेन्द्र-इसे मैंने मन-ही-मन निश्चित कर लिया है।

सत्यानन्द-तब कन्या कहां है, सुनने की इच्छा न करो!

महेन्द्र-क्यों महाराज?

सत्यानन्द-जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे अपनी पत्नी, पुत्र, कन्या, स्वजनों से किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना पड़ता-स्त्री, पुत्र, कन्या का मुंह देखने से भी प्रायश्चित करना होता है। जब तक संन्तानों की मनोकामना सिद्ध न हो, तब तक तुम कन्या का मुंह देख न सकोगे। अतएव यदि सन्तान-धर्म ग्रहण करना निश्चित हो, तो कन्या का पता पूछकर क्या करोगे? देख तो पाओगे नहीं।..

महेन्द्र-यह कठिन नियम क्यों, प्रभु?

सत्यानन्द-संन्तानों का काम बहुत ही कठिन है। जो सर्वत्यागी है, उसके अतिरिक्त यह काम और किसी के लिए उपयुक्त नहीं है। मायारज्जु से जिस का चित बंधा रहता है, खूंटे में बंधी घोड़ी की तरह वह कभी स्वर्ग में पहुंच नहीं सकता।

महेन्द्र-महाराज! बात मैंने ठीक-ठीक समझी नहीं। जो स्त्री-पुत्र का मुंह देखता है, वह क्या किसी गुरुतर कार्य का अधिकारी नहीं हो सकता?

सत्यानन्द-पुत्र-कलत्र का मुंह देखने से हम देव कार्य भूल जाते हैं। सन्तान-धर्म का नियम काम और किसी के लिए उपयुक्त नहीं है।

महेन्द्र-तो क्या न देखने से ही कन्या को भूल जाऊंगा?

सत्यानन्द-यदि न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करो!

सत्यानंद- जीवानन्द, भवानंद और ज्ञानानन्द। शांति ने धनुष और तार लिया; एक झटके में उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसने धनुष सत्यानंद के पैरों पर फेंक दिया।

सत्यानंद विस्मित और स्तंभित हुए खड़े रह गये। कुछ देर बाद बोले- यह क्या! तुम देवी हो या दानवी।

शांति ने हाथ जोड़कर कहा- मैं सामान्य मानवी हूं, लेकिन ब्रह्मचारिणी हूं।

सत्यानंद- इससे क्या हुआ! तुम क्या बाल विधवा हो? नहीं, लेकिन बाल- विधवा में भी इतना बल नहीं होता, वह तो एकाहारी होती हैं।

शांति- मैं सधवा हूं।

सत्यानन्द- तो क्या तुम्हारे स्वामी का पता नहीं है- निरूदिष्ट है?

शांति- नही, उनका पता है; उन्हीं के उद्देश्य से मै यहां आयी हूं।

मेघ हटकर सहसा निकल आनेवाली धूप की तरह सत्यानंद की स्मृति जाग पड़ी है।

उन्होंने कहा- याद आ गया। जीवानंद की पत्नी का नाम शांति है। तुम क्या जीवानन्द की ब्राह्मणी हो? अब शांति शरमा गयी। उसने अपनी जटा से मुंह ढांक लिया मानो कितने ही हाथियों के झुण्ड पद्म पर घिर गये हों। सत्यानन्द ने पूछा -क्यों तुम यह पापाचार करने आयी?

सहसा शान्ति ने चेहरे पर से जटाएं हटाते हुए कहा- इसमें पापाचरण क्या है,प्रभु? पत्नी यदि पति का अनुसरण करे, तो यह पापाचरण कैसे है। संतान धर्मशास्त्र में यदि इसे पापाचार कहते है तो सन्तान धर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूं। वे धर्माचरण में प्रवृत्त है, मैं भी उनके साथ धर्माचरण में सहयोग देने के लिए ही आयी हूं।

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुनकर,उन्नत ग्रीव स्फीतवक्ष, कम्पित अधर तथा उ”वल फिर भी आंसू भरी आंखें देखकर सत्यानन्द बहुत प्रसन्न हुए; बोले-तुम साध्वी हो; लेकिन देखो बेटी- पत्नी केवल गृहधर्म में ही सहधर्मिणी होती है- वीर-धर्म में रमणी क्या सहयोग करेगी?

शान्ति- कौन अपत्नीक होकर आज तक महावीर हो सका है? सीता के न रहते क्या रामवीर हो सकते? अर्जुन के कितने विवाह हुए थे, जरा गिनिये तो? भीम को जितना बल था, उतनी ही क्या उनकी पत्नियां नहीं थी? कितना गिनाऊँ? फिर क्या आपको बताने की जरूरत है?

सत्यानन्द-बात ठीक है, लेकिन रणक्षेत्र में कौन वीर अपनी पत्नी को संग लेते है?

शान्ति- अर्जुन ने जब दानवी सेना के साथ अन्तरिक्ष में युद्ध किया था, तो उनके रथ को कौन चला रहा था? द्रौपदी के संग न रहते क्या पाण्डव कभी कुरुक्षेत्र में जूझ सकते थे?

सत्यानन्द-वह हो सकता हे, लेकिन सामान्य मनुष्यों का हृदय स्त्रियों में आसक्त रहता है और वही उन्हें कार्य से विरत करता है। इसीलिए सन्तानों का यह व्रत है कि वे कभी स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। क्या तुम मेरा दाहिना हाथ काट देने के लिए आयी हो?

शान्ति- मैं आपके हाथ में बल बढ़ाने के लिए आयी हूं। मैं ब्रह्मचारिणी हूं, और प्रभु के समीप ब्रह्मचारिणी ही रहूंगी। मैं केवल धर्माचरण के लिए आयी हूं, स्वामी-दर्शन के लिए नहीं- विरह यंत्रणा से मैं कातर नहीं हूं। पतिदेव ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी भागिनी क्यों न बनूं? इसीलिये आयी हूं।

सत्यानन्द- अच्छा तो कुछ दिन तुम्हारी परीक्षा करके देखूंगा।

शान्ति बोली- क्या मैं आनन्द मठ में रह सकूंगी?

सत्यानन्द-आज और कहां जाओगी?

शान्ति- इसके बाद?

सत्यानन्द- मां भवानी की तरह तुम्हारे ललाट पर अग्नि तेज है, सन्तान सम्प्रदाय को क्यों भस्म करोगी?

इसके बाद आशीर्वाद देकर सत्यानन्द ने शांति को विदा किया।

शांति मन ही मन बोली-रहो बूढ़े भगवान! मेरे कपाल में आग है? मैं मुंहजली हूं कि तेरी दादी मुंहजली है?

वस्तुत: सत्यानन्द का वह अभिप्राय नही था- आंखों के विद्युत प्रकाश से ही उनका मतलब था लेकिन यह बात क्या बुड्ढों को युवतियों से कहनी चाहिये?

उस रात शांति को मठ में रहने की अनुमति मिली थी, इसीलिए वह कमरा खोजने लगी। अनेक कमरे खाली पड़े हुए थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था- वह भी छोटी पदवी का सन्तान था- वह हाथ में प्रदीप लिये हुए शांति को कमरे दिखाने लगा। कोई कमरा शांति को पसन्द न आया। हताश होकर गोवर्द्धन शांति को सत्यानन्द के पास वापस ले जाने लगा। शांति बोली- भाई सन्तान! इधर की तरफ जो कई कमरे है, उन्हें तो नहीं देखा गया!

गोवर्द्धन बोला- वह सब कमरे है तो अवश्य बहुत सुन्दर किन्तु उनमें सन्तान लोग है।

शांति- उसमें कौन कौन है?

गोवर्द्धन- बड़े बड़े सेनापति है।

शांति- बड़े बड़े सेनापति वे सेनापति कौन है?

गोवर्द्धन- भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द- आनन्द मठ आनन्दमय है!

शांति- चलो न, जरा वे कमरे देख आएं।

गोवर्द्धन पहले शांति को धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे- अभिमन्यु ने किस तरह सप्तमहारथियों के साथ युद्ध किया था, इसी में उनका चित्त निविष्ट था। वे कुछ न बोले। शांति बिना कुछ बोले-चाले आगे बढ़ गयी।

इसके बाद शांति ने भवानन्द के कमरे में प्रवेश किया। उस समय भवानन्द उर्ध्वदृष्टि किये किसी के चेहरे की याद में तल्लीन थे। किसका चेहरा, यह नहीं जानते, लेकिन चेहरा बड़ा सुन्दर है- कृष्ण-कुंचित सुगन्धित अलकराशि आकर्णप्रसारी भ्रूयुग के ऊपर पड़ी हुई है, मध्य में अनद्य त्रिकोण ललाट देश है, उस पर मृत्यु की कराल कालछाया ग्रहण की तरह जान पड़ती है- मानो वहां मृत्यु और मृत्युंजय में द्वन्द्व हो रहा हो! नयन मूंदे हुए, भौंहे स्थिर, ओंठ नीले, गाल पीले, नाक शीतल, वक्ष उन्नत, वायु कपड़े को हिला रही है। इसके बाद ही जैसे शरतमेघ में विलुप्त चन्द्रमा क्रमश: मेघदल को अतिक्रम कर अपना सौंदर्य विकसित करता है; जैसे प्रभात का सूर्य तरंगाकृति मेघमाला को क्रमश: सुवर्णरंग से रंजित कर स्वयं प्रदीप्त होता है, दिग्मण्डल को आलोकित करता है, स्थल, जल, कीट-पतंग सबको प्रफुल्ल करता है- वैसे ही उस शांत देह में आनंदमयी शोभा का संचार हो रहा था। आह! कैसी अनुपम शोभा थी! भवानन्द यही ध्यान कर रहे थे, अत: उन्होंने भी कोई बात न कही। कल्याणी के रूप से उनका हृदय कातर हो गया था, शांति के रूप की तरफ उन्होंने ध्यान ही न दिया।

व्याधा जैसे हरिण के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वह संन्यासी शान्ति को देखकर उसके पीछे दौड़ता था। किन्तु शान्ति ने व्यायाम आदि के कारण पुरुष-दुर्लभ बल-संचय किया था। अध्यापक के समीप आते ही वह उन्हें जोर के घूंसे और लात जमाती थी, जो साधारण न होते थे। एक दिन एकान्त होकर संन्यासी ने बड़ा जोर लगातार शान्ति का हाथ पकड़ लिया। शान्ति हाथ छुड़ा न सकी। लेकिन संन्यासी ने दुर्भाग्यवश शान्ति का बायां हाथ पकड़ा था, अत: दाहिने हाथ से शान्ति ने संन्यासी के सिर में इस जोर का घूंसा जमाया कि संन्यासी कटे पेड़ की तरह धड़ाम से चकराकर गिर पड़े। शान्ति ने संन्यासी सम्प्रदाय का त्याग कर पलायन किया।

शान्ति निर्भय थी, अकेली अपने गांव की तरफ चल पड़ी। साहस और बाहुबल से वह निर्विघ्न यात्रा करती रही। भिक्षा मांगकर और जंगली कन्द-मूल आदि फलों से अपनी क्षुधा मिटाती वह अनेक आपदाओं में विजय-लाभ करती अपने ससुराल आ पहुंची। उसने देखा, श्वसुर का स्वर्गवास हो गया है; लेकिन सास ने उसे घर में स्थान न दिया-जाति जाने का डर था। शान्ति तुरन्त बाहर निकल गयी।

जीवानन्द घर में ही थे। उन्होंने शान्ति का पीछा और उसे राह में पकड़कर पूछा-तुम मेरा घर छोड़कर कहां चली गयी थीं? इतने दिनों तक कहां रहीं? शान्ति ने सारी सच्ची बातें कह दीं। जीवानन्द को सच-झूठ की परख थी। उसने शान्ति की बात का विश्वास किया।

अप्सराओं के भ्रूविलास से युक्त कटाक्ष-ज्योति द्वारा निर्मित जो काम-शेर है, उसका अपव्यय-पुष्प घन्वा मदनदेव विवाहित दम्पतियों के प्रति नहीं किया करते। अंगरेज पूर्णिमा की रात को भी शाही राह पर गैस या बिजली जताते हैं, बंगाली देह में लगाने वाले तेल का ढाल देते हैं; मनुष्यों की बात तो दूर हैं, सूर्य देव के उदय के बाद भी कभी-कभी चन्द्रदेव आवास में उदित रहते हैं, इन्द्र सागर पर भी वृष्टि करता है; जिस सन्दूक में छिपाकर धनराशि रखी रहती है, कुबेर उसी सन्दूक से धन ले जाते हैं; यमराज जिसके घर से सबको ले गये रहते है, प्राय: उसी घर के बचे हुए लोगों से दृष्टि डालते है, केवल रतिप्रति ऐसी निर्बुद्धिता नहीं करते-जहां वैवाहिक गांठ बंध जाती है, वहां फिर वे परिश्रम नहीं करते-प्रजापति को सारा भार देकर, जहां किसी के हृदय के रक्त को उत्तेजित कर सकें, मदनदेव वहीं जाते हैं। लेकिन आज तो जान पड़ता है पुष्पधन्वाको और कोई काम था-एकाएक उन्होंने दो पुष्पवाणों का अपव्यय किया-एक ने आकर जीवानन्द के हृदय को वेध दिया-दूसरे ने शान्ति के हृदय में प्रवेश कर उसे बता दिया यह स्त्रियों का कोमल हृदय है। नवमेघ से छलके प्रथम जलकणों से भींगी पुष्पकलिका की तरह शान्ति सहसा खिलकर जीवानन्द के मुंह के तरफ निहारती रही।

जीवानन्द ने कहा- मैं तुम्हें परित्याग न करूंगा। मैं जब तक लौटकर न आऊं, तुम यहीं खड़ी रहना।

शांति ने पूछा-तुम लौटकर आओगे न?

जीवानन्द और कोई उत्तर न देकर, और किसी की परवाह न कर, राह की बगल में नारियल वृक्षों की छाया में शांति के अधरों पर अधर रख, सुधपान कर चले गये।

माता को समझा-बुझाकर और विदा लेकर जीवानन्द तुरंत लौट आये। हाल में ही जीवानन्द की बहन निमाई की शादी भैरवीपुर में हुई थी। बहनोई के साथ जीवानंद का प्रेम था। जीवानंद शांति को लेकर वही गये। बहनोई ने उन्हें थोड़ी जमीन दी; जीवानन्द ने उस पर एक कुटी का निर्माण किया और वहीं शांति के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। स्वामी के सहवास में शांति का पुरुष भाव धीरे-धीरे गायब होने लगा। सुख स्वप्न की तरह उनका जीवन बीतने लगा। लेकिन सहसा वह सुख स्वप्न भंग हो गया- सत्यानन्द के हाथ में पड़कर जीवानन्द सन्तान धर्म ग्रहण कर शान्ति का परित्याग कर चले गये। पतित्याग के बाद यह प्रथम मिलन निमाई के प्रयत्न से हुआ, जिसका वर्णन पूर्व परिच्छेद में हो चुका है।

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाई के दरवाजे पर जा बैठी। निमाई गोद में लड़की को लेकर उसके पास आ बैठी। शांति की आंखों में नहीं है, उसने उन्हें पोंछ डाला है, बल्कि चेहरे पर मधुर मुस्कराहट है। फिर भी वह कुछ तो गम्भीर चिन्तायुक्त अनमनी सी दिखाई पड़ती ही है, उसे देखकर निमाई बोली- मुलाकात तो हो गयी न? शान्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुप रही। निमाई ने देखा कि शान्ति किसी तरह मन का भाप न बताएगी। शान्ति मन की बताना पसन्द भी नहीं करती, यह जानती हुई भी निमाई ने बात का ढर्रा उठाया, बोली-बता दो भाभी! यह कन्या कैसी है?

दूसरे दिन आनंदमठ के अन्दर एक कमरे में बैठे, निरुत्साह तीन संताननायक आपस में बातें कर रहे थे। जीवानन्द से सत्यानन्द से पूछा- महाराज! ईश्वर हम लोगों पर इतने अप्रसन्न क्यों हैं? किस दोष से हम लोग मुसलमानों से पराभूत हुए?

सत्यानंद ने कहा- भगवान अप्रसन्न नहीं हैं। युद्ध में जय-पराजय दोनों होती है। उस दिन हम लोगों की विजय हुई थी, आज पराजय हुई है, अन्त में फिर जय है। हमें निश्चित भरोसा है कि जिन्होंने इतने दिनों तक हमारी रक्षा की है, वे शंक -वक्र-गदाधारी वनमाली फिर हमारी रक्षा करेंगे। उनके पदस्पर्श कर हम लोग जिस महाव्रत से व्रती हुए हैं,अवश्य ही उस व्रत की हम लोगों को साधना करनी होगी- विमुख होने पर हमें अनन्त नरक का भोग करना पड़ेगा। हम अपने भावी मंगल के बारे में नि:संदेह है। लेकिन जैसे देव-अनुग्रह के बिना कोई काम सिद्ध हो नहीं सकता, वैसे ही पुरुषार्थ की भी आवश्यकता होती है। हम लोग जो पराजित हुए उसका कारण था कि हम नि:शस्त्र थे- गोली-बन्दूक के सामने लाठी, तलवार,भाला क्या कर सकता है! अत: हम लोग अपने पुरुषार्थ के न होने से हारे हैं। अब हमारा यही कर्तव्य है कि हमें भी अस्त्रों की कमी न हो।

जीवानन्द- यह तो बहुत ही कठिन बात है।

सत्यानन्द-कठिन बात है, जीवानन्द? सन्तान होकर तुम मुंह से ऐसी बात निकालते हो? सन्तानों के लिए कठिन है क्या?

जीवानन्द-आज्ञा दीजिये, इनका संग्रह किस प्रकार होगा?

सत्यानन्द-संग्रह के लिए आज रात मैं यात्रा करूंगा। जब तक मैं लौटकर न आऊं, तब तक तुम लोग किसी भारी काम में हाथ न डालना। लेकिन सन्तानों का आपस की एकता की रक्षा करना, उनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करना- इसका भार तुम दोनों पर ही है।

भवानंद ने पूछा-तीर्थयात्रा कर इन चीजों का संग्रह आप कैसे करेंगे? गोला-गोली, बन्दूक, तोप खरीदकर भेजवाने में बड़ा गोलमाल होगा; फिर आप इतना पाएंगे कहां, बेचेगा ही कौन, ले ही कौन आएगा?

सत्यानन्द -यह सब चीजें खरीदकर लाई जा नहीं सकती। मैं कारीगर भेजूंगा, यही तैयार करनी होंगी।

जीवानन्द-क्या यहीं, इसी आनन्दमठ में?

सत्यानन्द-यह कैसे हो सकता है-इसके उपाय की चिंता मैं बहुत दिनों से कर रहा हूं। भगवान ने अब उसका सुयोग उपस्थित कर दिया है। तुम लोग कहते थे-भगवान प्रतिकूल

हैं, लेकिन मैं देखता हूं कि भगवान अनुकूल हैं।

भवानंद-कहां कारखाना खोलेंगे?

सत्यानंद-पदचिन्ह में।

जीवानंद-यह कैसे? वहां कैसे होगा?

सत्यानंद-नहीं तो महेन्द्रसिंह को मैंने किसलिए व्रत ग्रहण करने को इतना तैयार किया है?

भवानंद-महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण कर लिया है?

सत्यानंद-व्रत ग्रहण नहीं किया है, लेकिन आज ही रात में उसे दीक्षित करूंगा।

जीवानंद-कैसे? महेन्द्र को व्रत ग्रहण करने के लिए क्या उपाय हुआ है-हम लोग नहीं जानते। उसकी स्त्री-कन्या का क्या हुआ? उन्हें कहां रखा गया? आज नदी किनारे मैने एक कन्या पायी थी; उसे मैने अपनी बहन के पास पहुंचा दिया है। उस कन्या के पास एक सुन्दर स्त्री मरी पड़ी हुई थी। वही तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नहीं थी? मुझे ऐसा ही भ्रम हुआ था।

सत्यानंद-वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या थी।

भवानंद चमक उठे अब वह समझ गये कि जिस स्त्री को उन्होंने पुनर्जीवित किया है, वही महेन्द्र की पत्नी कल्याणी है। लेकिन उसकी कोई बात इस समय उठाना उन्होंने उचित न समझा।

जीवानंद ने पूछा-महेन्द्र की स्त्री मरी कैसे?

सत्यानंद-जहर खाकर।

जीवानंद-जहर क्यों खाया?

सत्यानंद-भगवान ने स्वप्न में उसे प्राण-त्याग करने का आदेश किया था।

भवानंद-वह स्वप्नादेश क्या सन्तानों के कार्यों के लिए ही हुआ था?

सत्यानन्द- सन्तान दो तरह के हैं-दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित हैं, वे या तो संसारी हैं अथवा भिखारी। वे लोग केवल युद्ध के समय आकर उपस्थित हो जाते हैं; लूट का

हिस्सा या पुरस्कार पाकर फिर चले जाते हैं। जो दीक्षित होते हैं, वे सर्वस्वत्यागी हैं। यही लोग सम्प्रदाय के कत्ता हैं। तुम्हें मैं अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध न करूंगा। युद्ध के समय लाठी-लकड़ीवाले अनेक लोग हैं। बिना दीक्षित हुए सम्प्रदाय के किसी गुरुतर कार्य के अधिकारी तुम हो नहीं सकते।

महेन्द्र- दीक्षा क्या है? दीक्षित क्यों होना होगा? मैं तो अब से पहले ही मन्त्र ग्रहण कर चुका हूं।

सत्यानंद- उस मंत्र का त्याग करना होगा।

महेन्द्र- मन्त्र का त्याग करूंगा कैसे?

सत्यानन्द- मै वह पद्धति बता देता हूं।

महेन्द्र- नया मन्त्र क्यों लेना होगा?

सत्यानन्द- सन्तागण वैष्णव हैं।

महेन्द्र- यह मै समझ नहीं पाता हूं कि सन्तान वैष्णव कैसे हैं। वैष्णवों का तो अहिंसा ही परमधर्म होता है।

सत्यानन्द- वह चैतन्य देव का वैष्णव-धर्म है। नास्तिक बौद्ध धर्म के अनुकरण से जो वैष्णवता उत्पन्न हुई थी, उसी का लक्षण है। प्रकृत वैष्णव-धर्म का लक्षण दुष्टों का दमन और धरित्री का उद्धार है। कारण, भगवान विष्णु ही संसार के पालक हैं। उन्होंने दस बार शरीर धारणकर पृथ्वी का उद्धार किया था। केशी, हिरण्यकशिपु, मधु-कैटभ, पुर, नरक आदि दैत्यों का, रावणादि राक्षसों का तथा शिशुपाल आदि का संहार उन्होंने किया है। वहीं जेता, जयदाता, पृथ्वी के उद्धारकर्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं। चैतन्यदेव का वैष्णव धर्म वास्तविक वैष्णव-धर्म नहीं है-वह धर्म अधूरा है। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं- लेकिन भगवान केवल पे्रममय ही नहीं हैं, वे अनंत शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय ही नहीं हैं,वे अनंत शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय है, सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय हैं। हम दोनो ही वैष्णव हैं-लेकिन दोनों ही अधूरे हैं। बात समझ गये?

महेन्द्र- नहीं! यह तो कैसी नयी-नयी-सी बातें हैं। कासिमबाजार में एक पादरी के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसने भी कुछ ऐसी ही बातें कही थी। अर्थात ईश्वर प्रेममय है-तुम लोग यीशु से प्रेम करो-यह भी ऐसी ही बातें हैं!

सत्यानन्द- जिस तरह की बातों से हमारे चौदह पुरखे समझते आते हैं-उसी तरह की बातों से हम तुम्हें समझा रहे हैं। ईश्वर त्रिगुणात्मक है- यह सुना है?

महेन्द्र- हां, सत्व, रजस, तमस-यही तीन गुण हैं।

सत्यानंद- ठीक । इन तीनों गुणों की पृथक-पृथक उपासना होती है। उनके सत्व से दया-दक्षिणा आदि की उत्पत्ति होती है। वे अपनी उपासना भक्ति द्वारा करते हैं- चैतन्य सम्प्रदाय यही करता है। रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति होती है; इसकी उपासना युद्ध द्वारा, देवद्वेषीगण के निधन द्वारा होती है-वहीं हम करते हैं। और तमोगुण से ही भगवान भगवान अपनी साकार चतुर्भुज आदि विविध मूर्ति धारण करते हैं। केसर-चन्दनादि उपहार द्वारा उस गुण की पूजा होती है-सर्व साधारण वही करते हैं. अब समझे?

महेन्द्र- समझ गया-संतानगण उपासक सम्प्रदाय मात्र है।

सत्यानंद- ठीक है! हम लोग राज्य नहीं चाहते-केवल मुसलमान भगवान के विद्वेषी हैं-इसलिए समूल विनाश करना चाहते हैं।

सत्यानन्द बातचीत समाप्त कर महेन्द्र के साथ उठकर उस मठस्थित देवालय में जहां विराट आकार की भगवान विष्णु की मूर्ति विराजित थी, वहीं पहुंचे। उस समय वहां अपूर्व शोभा थी- रजत,स्वर्ण और रत्नरंजित प्रदीपों से मंदिर आलोकित हो रहा था; राशि-राशि पुष्पों की शोभा से मंदिर और देव मूर्ति शोभित थी; सुगन्धित मधुर धूमराशि से कक्ष वस्तुत: देवसान्निध्य का प्रमाण उपस्थित कर रहा था। मंदिर में एक और पुरुष बैठा हुआ- हरे मुरारे स्तोत्र का पाठ कर रहा था। सत्यानंद के वहां पहुंचते ही उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा- तुम दीक्षित होगे?

उसने कहा- मुझ पर कृपा कीजिये!

पैर छूकर महेन्द्र के विदा होने पर, उनके संग उसी दिन जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने उसे आशीर्वाद देकर बैठाया। इधर-उधर की मीठी बातें होने के बाद स्वामीजी ने कहा- क्योंजी, भगवान कृष्ण में तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नहीं!

शिष्य ने कहा- कैसे बताऊं? मैं जिसे भक्ति समझता हूं, शायद वह भंडैती या आत्मप्रतारणा हो!

सत्यानन्द ने सन्तुष्ट होकर कहा- ठीक है, जिससे दिन-प्रतिदिन भक्ति का विकास हो, ऐसी ही कोशिश करना। मैं आशीर्वाद देता हूं, तुम्हारी साधना सफल हो! कारण तुम अभी उम्र में बहुत युवा हो। वत्स! क्या कहकर बुलाऊं- अब तक मैंने पूछा नहीं।

नवसन्तान ने कहा- आपकी जो अभिरुचि हो! मै तो वैष्णवों का दासानुदास हूं।

सत्यानन्द- तुम्हारी नई उम्र देखकर तुम्हें नवीनानन्द बुलाने की इच्छा होती है, अत: तुम अपना यही नाम रखो! लेकिन एक बात पूछता हूं, तुम्हारा पहले क्या नाम था? यदि बताने में कोई बाधा हो, तब भी बता देना। मुझसे कहने पर बात दूसरे कान में न पहुंचेगी। सन्तानधर्म का मर्म यही है कि जो अवाच्य भी हो, उसे भी गुरू से कह देना चाहिए। कहने में कोई हानि न होगी।

शिष्य- मेरा नाम शान्ति देव शर्मा है।

सत्यानन्द- तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।

यह कहकर सत्यानन्द ने शिष्य की डेढ़ हाथ लम्बी काली-काली दाढ़ी को बांए हाथ से पकड़कर खींच लिया, नकली दाढ़ी अलग हो गयी। सत्यानन्द ने कहा- छि: बेटी! मेरी साथ ठगी? - और मुझे ही ठगना था तो इस उम्र में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों? और दाढ़ी तो दाढ़ी, यह कण्ठ का स्वर- यह आंखों की कोमल दृष्टि छिपा सकती हो? मै यदि ऐसा ही निर्बोध होता तो क्या इतने बड़े काम में कभी हाथ डालता?

बेशर्म शान्ति कुछ देर तक अपनी आंखों को हाथ से ढांके बैठी रही। इसके बाद ही उसने

हाथ हटाकर वृद्ध पर मोहक तिरछी चितवन डालकर कहा- प्रभु! तो इसमें दोष ही क्या है? स्त्री के बाहुओं में क्या बल नहीं रहता?

सत्यानन्द- गोष्पद में जितना जल होता है!

शान्ति- सब सन्तानों के बाहुबल की परीक्षा कभी आपने की है?

सत्यानन्द- की है।

यह कहकर सत्यानन्द एक इस्पात का धनुष और लोहे का थोड़ा तार ले आये। उसे शांति को देते हुए उन्होंने कहा- इसी इस्पात के धनुष पर लोहे के तार की डोरी चढ़ानी होगी। प्रत्यंचा का परिणाम दो हाथ है। डोरी चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है और चढ़ानेवाले को दूर फेंक देता है। जो इसे चढ़ा सकता है, वही वास्तव में बलवान है।

शांति ने धनुष और तार को अच्छी तरह देखकर पूछा- सभी संतान क्या इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं!

सत्यानन्द- नहीं, इसके द्वारा केवल उन लोगों के बल की थाह ले ली है।

शांति- क्या कोई भी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो नहीं सका?

सत्यानंद- केवल चार व्यक्ति।

शान्ति- क्या मैं पूछ सकती हूं कि वे कौन-कौन हैं?

सत्यानंद- हां, कोई निषेध नहीं है- एक तो मैं स्वयं हूं।

शांति- और?

शान्ति ने कहा- यह लड़की कहां से पायी -तेरे लड़की कब हुई रे।

मेरी नहीं, दादा की है!

निमाई ने शान्ति को जलाने के लिए यह बात कही थी, दादा की लड़की माने यह कि उसने भाई से यह लड़की पायी है। लेकिन शान्ति ने यह न समझा कि निमाई उसे चिढ़ाने के लिए कह रही है। अतएव शान्ति ने उत्तर दिया -मैं लड़की के बाप की बात नहीं पूछती हूं, मैं यह पूछती हूं कि इस लड़की की मां कौन है?

निमाई उचित दण्ड पाकर अप्रतिभ होकर बोली-कौन जाने किसकी लड़की है, दादा क्या जाने कहां से पकड़कर उठा लाये हैं - पूछने का भी अवसर न मिला। आजकल अकाल के दिनों में कितने लोग लड़के-बच्चे फेंक जाते हैं। मेरे ही पास कितने लोग अपनी सन्तान बेचने के लिए आये थे। लेकिन दूसरों के बाल-बच्चों को ले कौन? (फिर उन आंखों में सहसा जल भर आया और निमाई ने उसे पोंछ डाला) लड़की है बड़ी सुन्दर! भोली-भाली, गोरी-चिट्टी देखकर दादा से मैंने मांग ली है।

इसके बाद शान्ति की निमाई के साथ अनेक तरह की बातें होने लगीं। फिर निमाई के पति को घर लौट आते देख शान्ति उठकर कुटी में चली गयी।

कुटी में पहुंचकर उसने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद चूल्हे की जितनी राख वह बटोर सकी, बटोर ली। बची हुई राख के ऊपर जो अपने खाने के लिए उसने चावल पका रखे थे, उन्हें भी वहां से हटा दिया। इसके उपरान्त बहुत देर तक सोच में पड़ी रही और फिर आप-ही-आप बोली- इतने दिनों से जो सोच रखा था, आज वहीं करूंगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, आज सफल हुई-सफल क्यों, निष्फल-निष्फल! यह जीवन ही निष्फल है। जो किया है वही करूंगी एक बार में जो प्रायश्चित है, वही सौ बार में भी है।

यह सोचती हुई शान्ति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। जंगल में से कन्द-मूल-फल ले आई और अन्न के बदले उन्हीं को खाकर उसने अपना पेट भर लिया। इसके बाद उसने वही ढाका वाली साड़ी निकाली जिस पर निमाई का इतना आग्रह था। उसका किनारा उसने फाड़ डाला और शेष कपड़े को गेरू के रंग में रंग दिया। वस्त्र को रंगतें और सुखाते शाम हो गई। शाम हो जाने पर दरवाजा बन्द कर शान्ति बड़े तमाशे में लग गयी। माथे के आजानुलम्बित केशों का कुछ का कुछ अंश उसने कैंची से काट डाला और अलग रख दिया। बाकी बचे हुए उस कपड़े को उसने दो भागों में विभक्त कर दिया- एक तो उसने पहन लिया और दूसरे से अपने ऊपरी अंगों को ढंक लिया। इसके बाद उसने बहुत दिनों

से काम में न लाया गया शीशा निकाला और उसमें अपना रूप देखते हुए सोचा-हाय! मैं क्या करने जा रही हूं? इसके बाद ही दु:खी हृदय से वह अपने उन काटे हुए बालों को लेकर मूंछ और दाढ़ी बनाने लगी। लेकिन उन्हें वह पहन न सकी। उसने सोचा- छि:! यह क्या? अभी क्या इसकी उम्र है। फिर भी बुड्ढे को चरका देने के लिए इन्हें रख लेना अच्छा है? यह सोचकर उसने छिपाकर उन्हें अपने पास रख लिया। इसके बाद घर में से एक बड़ा हरिणचर्म निकालकर उसने गले के पास उसे पहनकर गांठ दी और घुमाकर शरीर आवृत कर जंघों तक लटका लिया। इस तरह सज्जित होने के बाद इस नये संन्यासी ने घर में एक बार चारों तरफ देखा। आधी रात हो जाने पर, शान्ति ने इस प्रकार संन्यासी वेश में दरवाजा खोलकर अन्धकारपूर्ण गम्भीर वन में प्रवेश किया। वनदेवियों ने उस एकान्त रात में अपूर्व गायन सुना-

(बंगला यथावत)

(1)

दूरे उड़ि घोड़ा चढ़ि कोथा तुमी जाओ रे,

समरे चलि तू आमि हाम ना फिराओ रे

हरि-हरि हरि-हरि बोलो रणरंगे

झांप दिबो प्राण आजि समर-तरंगें,

तुमि कार कि तोमार केलो एसो संगे,

रमण ते नाहिं साध, रणजय गाओ रे !

(2)

पाये धरी प्राणनाथ आमा छेड़े जेओ ना,

एई सुनो, बाजे घन रणजय बाजना।

नापिछे तुरंग मोर रण करे कामना,

उड़िलो आमार मन घरे आर रबो ना।

रमधी ते नाहिं साथ, रणजय गाओर।

सत्यानन्द- तुम लोग इन भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो कि संतान-धर्म के सारे नियमों का पालन करोगे!

दोनों- करूंगा।

सत्यानन्द- जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों तक गृहधर्म का परित्याग किये रहोगे?

दोनों- करूंगा।

सत्यानन्द- माता-पिता का त्याग करोगे?

दोनों- करूंगा।

सत्यानन्द- भ्राता-भगिनी?

दोनों- त्याग करूंगा।

सत्यानंद- दारा-सुत?

दोनों- त्याग करूंगा।

सत्यानंद- आत्मीय-स्वजन? दास-दासी?

दोनों- इन सबका त्याग किया।

सत्यानंद- धन-सम्पदा-भोग?

दोनों- सबका परित्याग।

सत्यानन्द- इन्द्रियजयी होगे? नारियों के साथ कभी एक आसन पर न बैठोगे?

दोनों- न बैठेंगे; इन्द्रियां वश में रखेंगे।

सत्यानन्द- भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो-अपने लिए या अपने स्वजनों के लिए अर्थोपार्जन नहीं करोगे! जो कुछ उपार्जन करोगे, उसे वैष्णव धनागार को अर्पित कर दोगे!

दोनों- देंगें।

सत्यानन्द- सनातन-धर्म के लिए स्वयं अस्त्र पकड़कर युद्ध करोगे?

दोनों- करेंगे।

सत्यानन्द- रण में कभी पीठ न दिखओगे?

दोनों- नहीं।

सत्यानन्द- यह प्रतिज्ञा भंग हो तो?

दोनों- जलती चिता में प्रवेश कर अथवा विषपान कर प्राण त्याग देंगे।

सत्यानन्द- और एक बात है, और वह है जाति। तुम किस जाति के हो? महेन्द्र तो कायस्थ है। तुम्हारी जाति?

दूसरे व्यक्ति ने कहा- मै ब्राह्मण-कुमार हूं।

सत्यानन्द- ठीक। तुम लोग अपनी जाति का त्याग कर सकोगे? समस्त सन्तान एक जाति में हैं। इस महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र का विचार नहीं है। तुम लोगों का क्या मत है?

दोनों- हम लोग भी जाति का ख्याल न करेंगे। हम सब माता की सन्तान एक जाति के हैं।

सत्यानन्द- अब मैं तुम लोगों को दीक्षित करूंगा। तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भंग न करना। भगवान मुरारि स्वयं इसके साक्षी हैं। जो रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध, शिशुपाल आदि के विनाश-हेतु हैं, जो सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वजयी है, सर्व शक्तिमान हैं और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र को भी बिल्ली के नाखूनों के समान समझते हैं, वहीं प्रतिज्ञा-भंगकारी को विनष्ट कर अनन्त नरकवास देंगे।

दोनों- तथास्तु!

सत्यानन्द- अब तुम लोग गाओ- वन्देमातरम-

दोनों ने मिलकर एक एकांत मन्दिर में भक्ति-भावपूर्वक मातृगीत का गान किया। इसके बाद ब्रह्मचारी ने उन्हें यथाविधि दीक्षित किया।

दीक्षा समाप्त होने के बाद सत्यानन्दजी महेन्द्र को एक बहुत ही एकांत स्थान में ले गये। दोनों के वहां बैठने के बाद सत्यानन्द ने कहना आरम्भ किया-वत्स! तुमने तो यह महाव्रत ग्रहण किया है, उससे मुझे जान पड़ता है कि भगवान सन्तानों पर सदय हैं। तुम्हारे द्वारा माता का महत कार्य सिद्ध होगा। तुम ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनो! तुम्हें जीवानन्द, भगवान के साथ वन-वन घूमकर युद्ध करना नहीं पड़ेगा। तुम पदचिन्ह में वापस लौट जाओ। अपने घर में रहकर ही तुम्हें सन्तान-धर्म का पालन करना होगा।

यह सुनकर महेन्द्र विस्मित और उदास हुए, लेकिन कुछ बोले नहीं। ब्रह्मचारी कहने लगे-इस समय हम लोगों के पास आश्रय नहीं है,ऐसा स्थान नहीं है कि यदि प्रबल सेना आकर घेरकर आक्रमण करे तो हम लोग खाद्यादि के साथ फाटक बन्द कर कुछ दिनों तक युद्ध कर सकें। हम लोगों के पास गढ़ नही है। वहां अट्टालिका भी तुम्हारी है, गांव भी तुम्हारे अधिकार में हैं-मेरी इच्छा है कि अब वहां एक गढ़ तैयार हो। परिखा प्राचीर द्वारा पदचिन्ह को घेर देने से-उसमें खाई, खन्दक आदि युद्धोपयोगी किले-बन्दी कर देने से और जगह-जगह तोपें लगा देने से बहुत ही उत्तम गढ़ तैयार हो सकता है। तुम घर जाकर रहो, क्रमश: दो हजार संतान वहां जाकर उपस्थिति होंगे। उन लोगों के द्वारा खाई-खन्दक प्राचीर आदि तैयार कराते रहो। वहां तुम्हें एक लौह-कक्ष बनवाना होगा; वही संतानों का अर्थ-भण्डार होगा। मैं एक-एक कर सोने से भरे हुए संदूक तुम्हारे पास भेजवाऊंगा। तुम उसी धनराशि से यह सब तैयार कराओ। मैं परदेश जाता हूं। वहां से उत्तम कारीगर भेजूंगा। उनके आ जाने पर तुम पदचिन्ह में कारखाना स्थापित करो। वहां तोपें, गोले, बारूद, बन्दूक आदि निर्माण कराओ। इसीलिए मै तुम्हें घर जाने को कहता हूं।..

महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया।

आनन्दमठ भाग-7

इसके उपरांत शांति तीसरे कमरे में गई। उसने पूछा-यह किसका कमरा है?

गोवर्द्धन बोला-जीवानंद स्वामी का।

शांति-यहां कौन है? कहां, इस कमरे में तो कोई नहीं है।

गोवर्द्धन-कहीं गए होंगे, अभी आ जाएंगे।

शांति-यह कमरा सब कमरों से उत्तम है।

गोवर्द्धन-भला यह कमरा ऐसा न होगा!

शांति-क्यों?

गोवर्द्धन- जीवानंद स्वामी इसमें रहते हैं न!

शांति-मैं इसी में रह जाती हूं, वह कोई दूसरा कमरा खोज लेंगे।

गोवर्द्धन-भला ऐसा भी हो सकता है? जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें चाहे मालिक समझिये, या जो चाहे समझिए- जो कहते हैं, वहीं होता है।

शांति-अच्छा तुम जाओ, मुझे यदि जगह न मिलेगी तो पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी!

यह कहकर गोवर्द्धन को बिदा कर शांति उसी कमरे में घुसी! कमरे में घुसकर शांति जीवानंद का कृश्णाजिन बिछाकर और दीपक तेज कर उनकी रखी एक किताब पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद जीवानंद उपस्थित हुए! शांति का यद्यपि पुरुष वेश था, फिर भी उन्होंने आते ही पहचान लिया, बोले-यह क्या? शांति?

शांति न धीरे-धीरे पुस्तक रखकर जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा-महाशय! शांति कौन है?

जीवानंद भैचक्के से रह गए, अंत में बोले-शांति कौन है? क्यों, क्या तुम शांति नहीं हो?

शांति उपेक्षा के साथ बोली-शांति कौन है? क्यों, क्या तुम शांति नहीं हो?

शांति उपेक्षा के साथ बोली- मैं नवीनानंद स्वामी हूं।

यह कहकर वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानंद खखाकर हंस पड़े, बोले-यह नया तमाशा बढिया है! अच्छा श्री श्री नवीनानंद जी! क्या सोचकर यहां पहुंच गए?

शांति बोली-यह नया तमाशा बढिया है! अच्छा भले आदमियों में रिवाज है कि पहली मुलाकात में आप-श्रीमान-महाशय आदि शब्दों से संबोधन करना चाहिए। मैं भी आपसे असम्मान-जनक रूप में बातें नहीं करता हुं। तब आप मुझे तुम-तुम क्यों कहते हैं?

जो आज्ञा-कहकर गले में कपड़ा डालकर हाथ जोड़कर जीवानंद ने कहा- अब विनीत भाव से भृत्व का निवेदन है, कि किस कारण भैरवीपुर से इस दीन-भवन में महाशय का शुभागमन हुआ है? आज्ञा किजिए!

शांति ने अति गंभीर भाव से कहा-व्यंग्य की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं भैरवीपुर को पहचानता ही नहीं। मैं संतानधर्म ग्रहण करने के लिए आज आकर दीक्षित हुआ हूं।

जीवानंद-अरे सर्वनाश! क्या सचमुच?

शांति-सर्वनाश क्यों? आप भी तो दीक्षित है!

जीवानंद-तुम तो स्त्री हो!

शांति-यह कैसे? ऐसी बात आपने कैसे सुनी?

जीवानंद-मेरा विश्वास था कि मेरी ब्राह्मणी? स्त्री है।?

शांति-ब्रह्मणी? है या नहीं?

जीवानंद-थी तो जरूर!

शांति-आपको विश्वास है कि मैं आपकी ब्राह्मणी हूं?

जीवानंद ने फिर गले में कपड़ा डालकर बड़े ही विनीत भाव से कहा-अवश्य महाशयजी!

शांति-यदि ऐसी मजाक की बात आपके मन में है, तो सही, आपका कर्तव्य क्या है?

जीवानंद-आपके शरीर के कपड़ों को बलपूर्वक हटा देने के बाद अधर-सुधापान!

शांति-यह आपकी दृष्ट-बुद्धि है, या मेरे प्रति असाधारण भक्ति का परिचय मात्र है! आपने दीक्षा के अवसर पर शपथ ली है कि स्त्री के साथ एकासन पर कभी न बैठूंगा। यदि आपका यह विश्वास हो कि मैं स्त्री हूं-ऐसा सर्प-रज्जु भ्रम अनेक को होता है- तो आपके लिए उचित यही है कि अलग आसन पर बैठें। मुझसे तो आपको बात भी नहीं करनी चाहिए!

यह कहकर शांति ने फिर पुस्तक पाठ में मन लगाया। अंत में परास्त होकर जीवानंद पृथक शय्या-रचना कर लेट गए।

भगवान की अनुकंपा से 76 वें बंगाब्द का अकाल समाप्त हो गया। बंगाल प्रदेश के छ: आना मनुष्यों को-नहीं कह सकते, कितने कोटि-यमपुरी को भेजकर वह दुर्वत्सर स्वयं काल के गाल में समा गया। 77वें वर्ष में ईश्वर प्रसन्न हुए। सुवृष्टि हुई, पृथ्वी शस्यश्यामला हुई; जो लोग बचे थे, उन्होंने पेट भरकर भोजन किया। अनेक अनाहार या अल्पाहार से बीमार पड़ गए थे, पूरा आहार सह नहीं सके। बहुतेरे इसी में मरे। पृथ्वी तो शस्यश्यामलिनि हुई, लेकिन जनशून्या हो गयी। बंगाल प्रदेश जंगलों से भर गया। जहां हंसती हुई हरियाली भूमि थी, जहां असंख्या गो-महिषों की चरने की भूमि थी, जो गांव की भूमि युवक-युवतियों की प्रमोद-भूमि थी-वह सब महारण्य में परिणत होने लगी। इसी तरह एक वर्ष गया, दो वर्ष गए, तीन वर्ष गए। जंगल बढ़ते ही जाते थे। जो मनुष्यों के सुख के स्थान थे, वहां हिंसक शेर आदि पशु आकर हरिणों पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणों से पायजेब आदि पशु आकर हरिणों पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणों से पायजेब आदि की झनकार करती हुई, वृद्धाओं के साथ व्यंग करती हुई, हंसती हुई गुजरा करती थी, वहीं अब भालुओं ने अपने बच्चों को लालन-पालन शुरू किया है। जहां छोटी उम्र के बालक सांयकाल के समय जुटकर, फूले हुए पुष्प जैसा हृदय लेकर मनमोहक हंसी से स्थान गुंजया करते थे, अब वहां श्रृंगालों के विवर हैं। नाट्यमंदिरों में दिन के समय सर्पराजों की भयंकर फुफकार सुनाई पड़ती है। अब बंगाल में अन्न होता है; लेकिन कोई खाने वाला नहीं है। बिक्री के लिए पैदा करते है, लेकिन कोई खरीददार नहीं है। कृषक अनाज पैदा

करते है, पर पैसे नहीं मिलते। जमींदार को वे लगान दे नहीं सकते। राजा के जमींदारी छीन लेने पर जमींदार सर्वहृत होकर दरिद्र हो गए। वसुमती के बहु-प्रसविनी होने पर भी जनता कंगाल हो गयी। चोर-डाकुओं ने माथा उठाया और साधु पुरुषों ने घर में मुंह छिपाया।

इधर संतान-संप्रदाय नित्य चंदन-तुलसी से विष्णु-पादपद्यों की पूजा करने लगा। जिनके घर में पिस्तौल-बंदूकें थी, संतानगण उससे वह छीन लाए। भवानंद ने सहयोग्यिों से कह दिया था-भाई! यदि किसी घर में मणि-माणिक्य गंजा हो और एक टूटी हुई बंदूक भी हो, तो बंदूक ले आना, धन-रत्न छोड़ देना।

इसके बाद ये लोग गांव-गांव में अपने गुप्तचर भेजने लगे। पर लोग जहां हिंदू होते थे, कहते थे भाई! विष्णु-पुजा करोगे! इसी तरह बीस-पचीस संतान किसी मुसलमान बसती में पहुंच जाते और उनके घर में आग लगा देते थे; उनका सर्वस्व लूटकर हिंदू विष्णु-पुजकों में उसे वितरित कर देते थे। लूट का भाग पाने पर लोगों के प्रसन्न होने पर उन्हें संतानगण मंदिर में लाकर विष्णुचरणों पर शपथ खिलाकर संतान बना लेते थे। लोगों ने देखा कि संतान होने में बड़ा लाभ है। विशेषत: मुसलमानों राजत्वकाल में उनकी अराजकता और कुशासन से लोग ऊब उठे थे। हिंदू धर्म की विलोपावस्था के समय अनेक हिंदू अपने देश में हिंदुत्व-स्थापन के लिए व्यग्र हो रहे थे। अत: दिन-प्रतिदिन संतानों की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सौ-सौ, मास में हजार-हजार की संख्या में ग्रामीण लोग संतान बनाकर उनकी संख्या वृद्धि कर मुसलमानों को शासन से विरत करने लगे। जीवानंद और भवानंद के पदपद्मों में प्रणाम कर संतानों की संख्या अनंत होने लगी। जहां वे लोग राजपुरुषों को पाते थे, अच्छी तरह मरम्मत करते थे, मुसलमानों के गांव भस्म कर राख बनाए जाने लगे। स्थानीय मुसलमान नवाब यह सुनकर दल-के-दल सैनिकों को इनके दमन के लिए भेजते थे; लेकिन उस समय तक संतान गण दलबद्ध, शस्त्रयुक्त और महादंभशाली हो गए थे। उनके तेज के आगे मुसलिम फौज अग्रसर हो न पाती थी; यदि आगे बढ़ती थी तो अमित संख्या में संतान-सैन्य उस पर आक्रमण कर उनको धुनकी हुई रुई की तरह उड़ा देती थी। कभी कोई दल यदि परास्त होता या, तो तुरंत दूसरा बड़ा दल आकर उस मुस्लिम फौज का सर उड़ा देता था और मत होकर हरिनाम का जयघोष करता, नाचता गायब हो जाता था। उस समय लब्धप्रतिष्ठ अंगरेज कुल के प्रात: सूर्य वारेन हेस्टिंग्स

भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए वे राजनीतिक श्रृंखला की कड़ियां गिन रहे थे कि इसी से वे समूचे भारत को बांध लेंगे। एक दिन भगवान ने भी सिंहासन पर बैठकर नि:संदेह कहा था- तथास्तु! लेकिन वह दिन अभी दूर था। आजकल तो संतानों की दिगंत-व्यापिनी हरिध्वनि से वारेन हेस्टिंग्स भी कांप उठे थे।

हेस्टिंग्स साहब ने पहले तो देशी फौज से विद्रोह दबाने की चेष्टा की थी। लेकिन उन देशी सिपाहियों की यह दशा हुई कि वे लोग एक बुड्ढी औरत के मुंह से भी यदि हरिनाम सुन पाते थे, तो भागते थे, अंत में निरूपाया होकर वारेन हेस्टिंग्स ने कप्तान टॉमस नामक एक सुदक्ष सेनापति के अधिनायकत्व में थोड़ी गोरी फौज भेजकर विद्रोह-दमन का यत्न किया।

कप्तान टॉमस विद्रोह- निवारण के लिए बहुत ही उत्तम उपाय करने लगे। उन्होंने अपनी गोरी पल्टन के साथ नवाब की सेना और जमींदारों के आदमी मिलाकर एक अत्यंत बलिष्ठ सेना तैयार कर ली। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्य के टुकड़े-टुकड़े कर उपयुक्त नायकों के हाथ में उन्होंने सौंप दिया। साथ ही उन लोगों को छोटे-छोटे निश्चित अंचलों में विभक्त कर दिया; कह दिया कि जहां संतानों को पाओ, पशु की तरह मारो और हंकाओ। गोरी सैन्य दम्भ की बोतल छान संगीन चढ़ाकर हुई। लेकिन टॉमस की सेना, जैसे खेती काटी जाती है, वैसे ही काटी जाने लगी। हरिध्वनि से टॉमस के कान बहरे हो गए; क्योंकि उस समय संतान असंख्य थे और प्रदेश भर में फैले हुए थे।

कप्तान जरा मन में आगा-पीछा कर रहे थे कि गोली मारें या न मारें; इसी समय विद्युत वेग से संन्यासी ने आक्रमण कर उनकी बन्दूक छीन ली। संन्यासी ने अपना वक्षावरण चर्म खोलकर फेंक दिया। एक झटके में जटा अलग हो गयी। कप्तान टॉमस ने देखा कि उसके सामने अपूर्व स्त्री-मूर्ति है। सुन्दरी ने हंसते-हंसते कहा- साहब! हम लोग नारी है, किसी को चोट नहीं पहुंचाती। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं कि जब हिन्दू- मुसलमानों में लड़ाई हो रही है, तो इस बीच में तुम लोग क्यों बोलते हो? अपने घर लौट जाओ!

साहब- कौन हो तुम?

शान्ति-देखते तो हो, संन्यासिनी हूं-जिन लोगों से लड़ने आये हो, मैं उन्हीं में से एक स्त्री हूं।

साहब- टुम हमाड़ा घड़ में रहेगा?

शान्ति-क्या तुम्हारी उपपत्नी बनकर?

साहब-इसी माफक रहने सकता; शादी नहीं करेगा।

शान्ति- मुझे भी एक बात पूछनी है, हमारे घर में एक सुन्दर बन्दर था,वह हाल में ही मर गया है- उसकी जगह खाली पड़ी है। कमरे में सिकड़ी डाल दूंगी। तुम उस दरबे में रहोगे? हमारे बगीचे में खूब केला होता है।

साहब- तुम बड़ी स्प्रीटेड वूमेन है। टुमारी करेज पर हाम खुशी है। टुम हमाड़ा घड़ में चलो। टुमाड़ा आदमी लड़ाई में मड़ेगा,टब टुम क्या कड़ेगा?

शान्ति- तब हमारी एक शर्त हो जाए। युद्ध तो दो-चार दिन में होगा ही। अगर तुम जीतोगे, तो मै तुम्हारी उपपत्नी होकर रहूंगी। अगर हम लोग जीतेंगे, तो तुम हमारे घर में उसी दरबे में बन्दर बनकर रहना और केला खाना।

साहब-केला बहुत अच्छा चीज । अभी तुम्हारे पास है?

शान्ति- ले अपनी बन्दूक ले! ऐसे बेवकूफों के साथ कौन बात करे!

यह कहकर शान्ति बन्दूक फेंककर हंसती हुई भाग गयी।

साहब के पास से भागकर शान्ति जंगल में गायब हो गयी। थोड़ी ही देर बाद साहब ने मधुर स्त्री-कण्ठ से गाना सुना-

ए यौवन-जल तरंग रोघिबे के

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

इसके साथ ही सारंगी पर वही मधुर झनकार उठी- ए यौवन-जल तरंग रोघिबे के?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

इसके साथ ही पुरुष कण्ठ के साथ फिर गाना हुआ-ए यौवन-जल तरंग रोघिबे को?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

तीन स्वरों की मिलित झनकार ने जंगल की समूची लताओं को कंपा दिया। शान्ति गाती

हुई गीत के पूरे चरण गाने लगी-

ए यौवन जल- तरंग रोघिबे के?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

ए यौवन जल- तरंग रोघिबे के?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

जलते तूफान होये छे

आमार नूतन तरी मसिलो सुखे,

माझीते हाल धरे छे,

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

मेंगे बालिरे बांध, पुराई मनेर साध,

जोरदार गांगे जल छूटे छे, राखिबे के?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे!

सारंगी भी बज रही थी-

जोरदार गांगेजल छूटे छे, राखिबे के ?

हरे मुरारे! हरे मुरारे।

जहां बहुत ही घना जंगल है- भीतर क्या है, बाहर से यह दिखाई नहीं देता, शांति उसी के अंदर प्रवेश कर गयी थी। वहीं उन्हीं शाखा- पल्लवों में छिपी हुई एक छोटी कुटी है। डालियों के ही बन्धन और पत्तों का छाजन है। काठ की जमीन, उस पर मिट्टी पटी हुई है। लताद्वार खोलकर उसी के अंदर शांति प्रवेश कर गयी। वहां जीवानंद बैठे सारंगी बजा रहे थे।

जीवानंद ने शांति को देखकर पूछा- इतने दिनों के बाद गंगा में ज्वार का जल बढ़ा है क्या?

शांति ने हंसते हुए उत्तर दिया- ज्वार का बढ़ा हुआ गंगा जल ही क्या तालों को डुबाता है?

जीवानंद ने दु:खी होकर कहा- देखो, शांति! एक दिन तो व्रत भंग होने के कारण प्राण उत्सर्ग करूंगा ही; जो पाप हुआ है, उसका प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। अब तक प्रायश्चित कर चुका होता, किन्तु केवल तुम्हारे अनुरोध के कारण कर न सका। लेकिन अब किसी दिन यह भी सम्भव हो जाएगा, विलम्ब नहीं है। उसी युद्ध में मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा। इस प्राण का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन.....

\ह्मशांति ने बात काट कर कहा- मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूं, सधर्मिणी हूं-धर्म में सहायक हूं। तुमने अतिशय गुरु धर्म ग्रहण किया है, उसी धर्म की सहायता के लिए मैं आई हूं। हम दोनों ही एक साथ रहकर उस धर्म में सहायक होंगे, इसलिए घर त्याग कर आयी हूं। मैं तुम्हारे घर में वृद्धि ही करूंगी। विवाह इहकाल के लिए भी होता है और परकाल के लिए भी होता है। इहकाल के लिए जो विवाह होता है, मन में समझ लो कि हमने वह किया ही नहीं। हमलोगों का विवाह केवल परकाल के लिए हुआ है। परकाल में इसका दूसरा फल होगा, लेकिन प्रायश्चित की बात क्यों? तुमने कौन सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे? कौन कहता है तुम किसी दिन भी एकासन पर बैठे हो? फिर प्रायश्चित क्यों? हाय प्रभु तुम मेरे गुरू हो, क्या मैं तुम्हें धर्म सिखाऊं? तुम वीर हो, लेकिन क्या मैं तुम्हें वीर-धर्म सिखाऊं?

जीवानंद ने आह्लाद से गदगद होकर कहा-प्रिये! सिखाओ तो सही!

शांति प्रसन्नचित से कहने लगी-और भी देखो गोस्वामी जी! इहकाल में ही क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझसे प्रेम करते हो, मैं तुमसे प्रेम करती हूं- इससे बढ़कर इहकाल में और कौन-सा फल हो सकता है? बोलो-वन्देमातरम्!

इसके बाद ही दोनों ने एक स्वर से वन्देमातरम् गीत गाया।

कल्याणी ने स्थिर भाव से उत्तर दिया-मेरे जीवन को किसी ने विषमय नहीं बनाया : जीवन स्वयं विषमय है-मेरा जीवन विषमय है; आपका जीवन विषमय है : सभी का जीवन विषमय है।

भवानन्द-सच है, कल्याणी! मेरा जीवन तो अवश्य विषमय है।...उसी दिन से तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है?

कल्याणी-नहीं?

भवानन्द-फिर क्या बात है?

कल्याणी-अच्छा नहीं मालूम होता।

भवानन्द-विद्या-अर्जन में तुम्हारी कुछ प्रवृत्ति देखी थी। अब ऐसी अश्रद्धा क्यों?

कल्याणी-आप जैसे पण्डित जब महापापिष्ठ हैं, तो न पढ़ना-लिखना ही अच्छा है। मेरे पतिदेव की क्या खबर है, प्रभु?

भवानन्द-बारंबार यह संवाद क्यों पूछती हो? वो तो तुम्हारे लिए मृत समान है।

कल्याणी-मैं उनके लिए मृत हूं; वे मेरे लिए नहीं।

भवानन्द-वह तुम्हारे लिये मृतवत् होंगे, यही समझकर तो तुमने विष खाया था? बार-बार यह बात क्यों कल्याणी?

कल्याणी-मर जाने से क्या संबंध मिट जाता है! वह कैसे है?

भवानन्द-अच्छे है।

कल्याणी-कहां है? पदचिन्ह में?

भवानन्द-हां, वहीं हैं!

कल्याणी-क्या कर रहे हैं?

भवानन्द-जो कर रहे थे-दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण; उन्हीं के द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्रों से सहस्त्रों सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उन्हीं की कृपा से अब हम लोगों को तोप, बन्दूक, गोला-गोली, बारूद आदि की कमी नहीं है। सन्तान गण में वही श्रेष्ठ हैं। वे हम लोगों को महत् उपकार कर रहे है; वे हम लोगों के दाहिने हाथ हैं।

कल्याणी-मैं प्राण-त्याग न करती, तो इतना होता! जिसकी छाती पर छेदही कलसी बंधी हो, वह क्या कभी भवसागर पार कर सकता है! जिसके पैरों में लौह सीकड़ पड़े हों, वह

क्या कभी दौड़ सकता है! क्यों संन्यासी! तुमने अपना क्षार जीवन क्यों बचा रखा था?

भवानन्द-स्त्री सहधर्मिणी होती है, धर्म में सहायक होती है।

कल्याणी-छोटे-छोटे धर्मो में। बड़े धर्मो के अनुसरण में कण्टक! मैंने विष-कटक द्वारा उनके अधर्म या कष्ट का उद्धार किया था। छि:, दुराचारी पामर ब्रह्मचारी! तुमने मेरे प्राण क्यों लौटाये?

भवानन्द-अच्छा, न तो मैंने जो किया है, उसे मुझे वापस कर दो। मैंने जो प्राण-दान किया है, क्या तुम उसे वापस कर सकती हो।

कल्याणी-क्या आपको पता है, मेरी सुकुमारी कैसी है?

भवानन्द-बहुत दिनों से उसकी खबर नहीं लगी। जीवानन्द बहुत दिनों से उधर गये ही नहीं।

कल्याणी-उसकी खबर क्या मुझे ला नहीं दे सकते? स्वामी मेरे लिए त्याज्य है; लेकिन जब जिन्दा रह गई हूं तो कन्या को क्यों त्याग दूं! अब तो सुकुमारी के पास जाने से ही जीवन में कुछ सुख मिल सकता है। लेकिन मेरे लिए इतना आप क्यों करेंगे।

भवानन्द-करूंगा कल्याणी! तुम्हारे लिए कन्या ला दूंगा; लेकिन इसके बाद?

कल्याणी-इसके बाद क्या गोस्वामी?

भवानन्द-स्वामी

कल्याणी-उन्हें तो इच्छापूर्वक त्यागा है।

भवानन्द-यदि उनका व्रत पूर्ण हो जाए तो?

कल्याणी-तो मैं उनकी हूंगी। मैं जो बच गई हूं, क्या वे यह जानते हैं?

भवानन्द-नहीं।

कल्याणी-आपसे क्या उनकी मुलाकात नहीं होती?

भवानन्द-होती है।

कल्याणी-मेरी बात कभी नहीं करते?

भवानन्द-नहीं! जो स्त्री मर गयी, उससे फिर पति का क्या सम्बन्ध!

कल्याणी-क्या कहा?

भवानन्द-तुम फिर विवाह कर सकती हो, तुम्हारे पुनर्जन्म हुआ है।

कल्याणी-मेरी कन्या ला दो!

भवानन्द-ला दूंगा! तुम फिर विवाह कर सकती हो?

कल्याणी-तुम्हारे साथ न?

भवानन्द-विवाह करोगी?

कल्याणी-तुम्हारे साथ

भवानन्द-यही मान लो।

कल्याणी-सन्तान धर्म कहां रहेगा?

भवानन्द-अतल जल में।

कल्याणी-यह तुम्हारा महाव्रत है?

भवानन्द-अतल जल में गया?

कल्याणी-किसलिए सब अतल जल में डुबाते हो?

भवानन्द-तुम्हारे लिए! देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, सबका चित्त अवश्य होता है। सन्तान-धर्म मेरा प्राण है, लेकिन आज पहले-पहल करता हूं, तुम प्राणों से भी बढ़कर प्राण हो। जिस दिन तुम्हें प्राण-दान किया, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों पर गिर गया। मैं नहीं जानता था कि संसार में ऐसा रूप भी है। ऐसी रूपराशि जीवन में कभी देखूंगा, यदि यह जानता तो कभी सन्तान-धर्म ग्रहण न करता। यह धर्म इस अग्नि में जलकर क्षार हो जाता है। धर्म जल गया है-प्राण है। आज चार वर्षो से प्राण भी जल रहा है, बचना नहीं चाहता। दाह! कल्याणी! दाह! ज्वाला! लेकिन जलने वाला, ईधन अब बच नहीं गया है। प्राण जा रहा है। चार बरस से सह रहा हूं; अब सहा नहीं जाता। क्या तुम मेरी होगी?

कल्याणी-तुम्हारे ही मुंह से सुना है कि सन्तान-धर्म का एक यह भी नियम है कि जिसकी

इन्द्रिय परवश हो जाए, उसका प्रायश्चित मृत्यु है। क्या यह सच है?

भवानन्द-यह सच है।

कल्याणी-तो तुम्हारे लिए भी वही प्रायश्चित मृत्यु है?

भवानन्द-मेरे लिए एकमात्र प्रायश्चित मृत्यु है।

कल्याणी-तुम्हारी मनोकामना पूरी होने पर मरोगे?

भवानन्द-निश्चय मरूंगा!

कल्याणी-और यदि मैं मनोकामना पूरी न करूं?

भवानन्द-तब भी मृत्यु निश्चय है। कारण, मेरी इन्द्रियां परवश हो चुकी हैं। आगामी युद्ध में...

कल्याणी-तुम अब विदा हो! मेरी कन्या भिजवा दोगे?

भवानन्द ने आंसू भरी आंखों से कहा-भिजवा दूंगा। क्या मेरे जाने पर भी मुझे हृदय में याद रखोगी?

कल्याणी-याद रखूंगी-व्रमच्युत विधर्मी के रूप में याद रखूंगी।

भवानन्द विदा हुए। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

भवानंद स्वामी एक दिन नगर में जा पहुंचे। उन्होंने प्रशस्थ राजपथ त्यागकर एक गली में प्रवेश किया। गली के दोनों बाजू ऊंची अट्टालिकाएं हैं, केवल दोपहर के समय एक बार वहां भगवान सूर्य झांक लेते हैं, इसके बाद अंधकार ही अंधकार। गली में घुसकर पास के ही एक दो-मंजिले मकान में भवानंद ने प्रवेश किया। नीचे की मंजिल में जहां एक अर्धवयस्का स्त्री रसोई बना रही थी, वहीं जाकर भवानंद स्वामी ने दर्शन दिया। वह स्त्री अर्धवयस्क, मोटी-झोटी, काली-कलूटी, मैली धोती पहने माथे के बाल ठीक खोपड़ी पर बांधे हुए, दाल की बटलोही में कलछी डालकर ठन-ठन बजाती हुई बाएं हाथ से मुंह पर

लटकानेवाले बालों को हटाली, कुछ मुंह से बड़बड़ाती, रसोई करती हुई सुशोभित हो रही थी। ऐसे ही समय भवानंद महाप्रभु ने घर में प्रवेश कर कहा-भाभी! राम-राम!

भाभी भवानंद को देखकर अवाक होकर अपने हटे हुए कपड़े ठीक करने लगी। इच्छा हुई कि सिर का मोहन जूड़ा खोल डाले, लेकिन खोल न सकी- हाथ में कलछी थी। हाय हाय! उस जूड़े के जंजाल में उसने एक बकुल पुष्प खोंस रखा था। वस्त्रांचल से उसे ढंकने की कोशिश की, लेकिन यह क्या? आज तो एक पांच हाथ का टुकड़ा मात्र पहन रखा था। अत: अंग ढंक न सकी। वह पांच हाथ का कपड़ा ऊपर उठाती थी तो छाती खुलती थी, छाती ढांकती थे तो पीठ खुलती थी, लाचार बेचारी परेशान हो गई। किसी तरह उसने एक कोना खींचकर कान के पास तक लाकर आधा चेहरा ढांकने का भाव कर प्रतिज्ञा की कि दूसरी एक धोती खरीदूंगी और तब इसे कभी न पहनूंगी। इस तरह व्यस्त होने के बाद बोली-कौन, गोसाई ठाकुर! आओ-आओ! लेकिन भाई! यह हमें राम-राम के साथ प्रणाम क्यों?

भवानंद-तुम मेरी भाभी जो हो!

गौरी-अच्छा, आदर से कहते हो तो कह लो। प्रणाम किया ही है, तो खुश रहो! फिर तुम्हें प्रणाम करना ही चाहिए, मैं उम्र में बड़ी जो हूं। लेकिन आखिर हो तो गोसाई ठाकुर देवता ही!

भवानंद स्वामी से गौरी की उम्र काफी बड़ी-करीब पचीस वर्ष बड़ी है। लेकिन चतुर भवानंद ने उत्तर दिया-भाभी! अरे तुम्हें रसीली देखकर भाभी कहता हूं। नहीं तो हिसाब जब किया गया था, तो तुम मुझसे छ: वर्ष छोटी निकली थीं। क्या याद नहीं है? हम लोगों में सब तरह के वैष्णव हैं न। इच्छा है कि एक मठधारी ब्रह्मचारी के साथ तुम्हारी सगाई करा दूं, यही कहने आया हूं।?

गौरी-यह कैसी बात? अरे राम-राम! ऐसी बात भला कही जाती? मैं ठहरी विधवा औरत!

भवानंद-तो सगाई न होगी?

गौरी-तो भाई! जैसा समझो वैसा करो। तुम लोग पंडित आदमी ठहरे। हम लोग तो और हैं,

क्या समझें? तो कब होगी सगाई?

भवानंद ने बड़ी मुश्किल से हंसी रोककर कहा-बास एक बार उस ब्रह्मचारी से मुलाकात होते ही पक्की हो जाएगी सगाई?

गौरी जल गई। मन में संदेह हुआ कि शायद सगाई की बात मजाक है। बोली-है, जैसी, है वैसी है!

भवानंद-तुम जरा जाकर एक बार देख आओ। कह देना कि मैं आया हू- एक बार मिलना चाहता हूं।

इस पर गौरी भात-दाल छोड़कर हाथ धोकर छमछम करती हुई सीढियां तोड़ती ऊपर चढ़ने लगी। एक कमरे में जमीन पर चटाई बिछाकर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी हुई हँै। लेकिन सौंदर्य पर एक घोर छाया है। मध्यान्ह के समय कलकलवाहिनी प्रसन्नसलिला, विपुल-जल-श्रोतवती नदी के ऊपर मेघ आने जैसी यह कैसी छाया है!

नदी-हृदय पर तरंगे उछल रही हैं, तटवर्ती कुसुमवृक्ष वायु के झोंके में मस्त झूम रहे हैं, पुष्प-भार से दबे जा रहे हैं, उनसे अट्टालिका-श्रेणी सुशोभित है। तरणी-श्रेणी के ताड़न से जल आंदोलित हो रहा है। यह भी वैसे ही पहले की तरह चारु, चिकने, चंचल, गुंथे केश, पहले का वैसा ही तेजपुंज ललाट और उस पर पतली तूलिका से खिंची हुई भौंहें, वही पहले जैसे चंचल मृग-नयन- लेकिन वैसे कटाक्षमय नहीं, वैसी लोलता नहीं, कुछ नम्र! अधरों पर वही दाडिम लालिमा, वैसे ही सुधारसपूर्ण, वैसे ही वनलता-दुष्प्राप्य कोमलतायुक्त बाहु। लेकिन आज वह दीप्ति नहीं, वह उ”वलता नहीं, वह प्रखरता नहीं, वह चंचलता नहीं, वह रस नहीं है-शायद वह यौवन भी नहीं है। केवल सौन्दर्य और माधुर्यमात्र, नयी बात आ गयी है-गाम्भीर्य। इसे पहले देखने से जान पड़ता था कि मनुष्य-लोक की अतुलनीय सुन्दरी है अब देखने से जान पड़ता है कि कोई स्वर्ग की शापग्रस्त देवी है। उसके चारों तरफ दो-चार पुस्तकें पड़ी हुई हैं। दीवार पर खूंटी के सहारे तुलसी की माला लटक रही है। दीवारों पर जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा, कालीयदमन, गोवर्धन-धारण आदि के चित्र टंगे हुए हैं। वे चित्र उसके स्वयं बनाये हुए हैं, उनके नीचे लिखा हुआ है-चित्र या विचित्र! ऐसे ही कमरे में भवानन्द ने प्रवेश किया।

भवानन्द ने पूछा-क्यों कल्याणी! शारीरिक कुशल तो है?

कल्याणी-यह प्रश्रन् करना आप न छोड़ेंगे? मेरे शारीरिक कुशल से आपका क्या मतलब?

भवानन्द-जो वृक्ष लगाता है, उसमें नित्य जल देता है-वृक्ष के बढ़ते से ही उसे सुख होता है। तुम्हारे मृत शरीर में मैंने नवजीवन दिया है। वह बढ़ रहा है या नहीं, मैं क्यों न पूछूंगा?

कल्याणी-विक्ष-वृक्ष का क्या कभी कोई दाम होता है?

भवानन्द-जीवन क्या विष है?

कल्याणी-न होता तो अमृत ढालकर में उसे ध्वंस करने को क्यों तैयार होती?

भवानन्द-बहुत दिनों से सोच रहा था-पूछूंगा, लेकिन पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय बना दिया था?

भवानन्द विचार-सागर में गोते लगाते हुए मठ की तरफ चले। वे राह में अकेले चले आ रहे थे। वन में भी अकेले ही उन्होंने प्रवेश किया। अब उन्होंने देखा कि वन में उनके आगे-आगे एक आदमी चला जा रहा है। भवानन्द ने पूछा-कौन हो भाई?

अग्रगामी व्यक्ति ने कहा-जानना चाहते हो? उत्तर देता हूं-एक पथिक

भावानन्द-वन्दे-

वह आदमी बोला-मातरम्।

भवानन्द-मैं भवानन्द स्वामी हूं।

अगग्रामी-मैं धीरानंद।

भवानन्द-धीरानंद! कहां गये थे?

धीरानंद-आपकी ही खोज में।

भवानन्द-क्यों?

धीरानंद-एक बात कहने।

भवानन्द-कौन-सी बात?

धीरानंद-अकेले में कहने की है।

भवानन्द-यहीं बताओ न, यह तो निर्जन स्थान है।

धीरानंद- आप नगर में गए थे

भवानंद- हाँ।

धीरानंद- गौरी के घर?

भवानंद- तुम भी नगर में गए थे क्या?

धीरानंद- वहां एक परम सुंदरी रहती है?

भवानंद- कुछ विस्मित भी हुए डरे भी। बोले- यह सब कैसी बातें हैं?

धीरानंद- आप उसके साथ मुलाकात की थी?

भवानंद- हसके बाद?

धीरानंद- आप उस कामिनी के प्रति अति अनुरक्त हैं?

भवानंद- (कुछ विचारकर) धीरानंद! तुमने क्यों इतनी खोज-बीन की। देखो धीरानंद! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सच है। लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त कितने लोग यह बात जानते है?

धीरानंद- और कोई नहीं।

भवानंद- तब तुम्हारा बध करने से ही मैं मुक्त हो सकता हूँ।

धीरानंद- कर सकते हो?

भवनांद- तब आओ, इस निर्जन स्थान में ही युद्ध करे। हो सकता तो मैं तुम्हारा बध कर कलंक से बचूं या तुम मेरा बध कर दो, ताकि सारी ज्वालाओं में मेरी मुक्ति हो जाए। बोलो, पास में अस्त्र है?

धीरानंद- है! खाली हाथ किसकी मजाल है कि तुम्हारे सामने यह बातें करे। यदि युद्ध की

ही तुम्हारी इच्छा है तो वही सही, पर संतान-संतान में विरोध निषिद्ध है किन्तु आत्महत्या के लिए किसी के साथ भी युद्ध करने में हर्ज नहीं। जो बात कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, क्या वह सब सुन लेने पर युद्ध करना अच्छा न होगा?

भवानंद- हर्ज क्यों है कहो!

भवानंद ने तलवार निकाल कर धीरानंद के कंधे पर रख दी। धीरानंद भागे नहीं।

धीरानंद- मैं यह कह रहा था कि तुम कल्याणी से विवाह कर लो।

भवानंद- कल्याणी यह! भी जानते हो?

धीरानंद- विवाह क्यों नहीं कर लेते?

भवानंद- उसके तो पति जीवित हैं

धीरानंद- वैष्णों का ऐसा विवाह होता है।

भवानंद- यह नीच वैरागियों की बात है-संतानों में नहीं। संतान की शादी नहीं होती।

धीरानंद- संतान-धर्म क्या अपरिहार्य है? तुम्हारे तो प्राण जा रहे हैं। छि:! छि:! मेरा कंधा न कट गया। (वस्तुत: धीरानंद के कंधे से रक्त निकल रहा था।)

भवानंद- तुम किसलिए मुझे यह अधर्म-मति देने आए हो? अवश्य ही तुम्हारा कोई स्वार्थ है!

धीरानंद- वह भी कहने की इच्छा है। तलवार न धंसना, बताता हूं। इस संतान-धर्म ने मेरी हड्डियों को जर्जर कर दिया है। मैं इसका परित्याग कर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताने के लिए उतावला हो रहा हूं। मैं इस संतान-धर्म का परित्याग करूंगा। लेकिन क्या मेरे लिए घर जाकर बैठने का अवसर है। विद्रोही के रूप में अनेक लोग मुझे पहचानते हैं। घर जाकर बैठते ही शायद राजपुरुष सर उतार ले जाएंगे। अथवा सन्तान लोग ही विश्वासघात समझकर मार डालेंगे। इसीलिए तुम्हें भी अपना साथी बना लेना चाहता है। भवानन्द-क्यों, मुझे क्यों?

धीरानन्द- यही असली बात है। सन्तान गण तुम्हारे अधीन हैं। सत्यानन्द अभी यहां हैं नहीं; इनके नायक हो तुम। इस सेना को लेकर युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी, इसका मुझे

विश्वास है। युद्ध में विजय प्राप्त कर क्यों नहीं तुम अपने नाम से एक राज्य स्थापित करते? सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं भी तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताऊं और आशीर्वाद करूं। सन्तान-धर्म को अलग जल में डुबो दो!

भवानन्द ने धीरानन्द के कंधे पर से तलवार हटा ली; बोले-धीरानन्द! युद्ध करो! मैं तुम्हारा वध करूंगा। मैं इन्द्रिय-परवश हो सकता है, लेकिन विश्वासघातक नहीं। तुमने मुझे विश्वासघाती होने का परामर्श दिया है-स्वयं भी विश्वासघातक हो। तुम्हें सामने मारने से ब्रह्महत्या भी न होगी। मैं तुम्हारा वध करूंगा!

बात समाप्त होते-न-होते धीरानन्द दम भरकर भागे। भगवान ने पीछा न किया। भगवान कुछ अनमने से थे; उन्होंने अब देखा, धीरानन्द का कहीं पता न था।

कम्पनी की उस समय अनेक कोठियां थी। ऐसी ही एक कोठी शिवग्राम में थी। डांनीवर्थ साहब इस कोठी के अध्यक्ष थे। उस समय रेशम-कोठी की रक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध हुआ करता था।

डॉनीवर्थ ने इसी वजह से किसी तरह अपनी प्राणरक्षा की। लेकिन अपनी स्त्री-कन्या को कलकत्ता भेज देने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा था; कारण-डॉनीवर्थ सन्तानों द्वारा बहुत ही पीडित हुए थे। उसी समय टॉमस साहब थोड़ी फौज लेकर उस अंचल में पहुंच गये। उस समय कितने ही डोम,चमार,लंगड़े-लूले भी पराया धन लूटने के लिए उत्साहित हो गये थे। उन सबों ने जाकर कप्तान टॉमस की रसद पर आक्रमण किया। कप्तान साहब बहुत अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री- घी, मैदा, सूजी, चावल गाडियों पर लदवाकर ले आ रहे थे। इसे देखकर डोम-चमारों का दल अपना लोभ संवरण कर न सका- उन सबने जाकर गाड़ी पर आक्रमण किया; लेकिन सिपाहियों की दो-चार संगीनें खाकर सब भागे।

कप्तान टॉमस ने उसी समय कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज कुल 157 (एक सौ संतावन

)सिपाहियों को लेकर मैंने 14730 विद्रोहियों को परास्त किया है। विद्रोहियों के 2153 (इक्कीस सौ तिरेपन) व्यक्ति मरे, 1223 घायल हुए और 7 व्यक्ति बन्दी हुए। केवल अन्तिम संख्या सत्य थी। कप्तान टॉमस ने द्वितीय ब्लेनहम या रसवाक का युद्ध जीता- यह सोचते हुए वे अपनी मूछों पर ताव देते हुए इधर-उधर ठाट से घूमने लगे। उन्होंने डॉनीवर्थ से कहा- अब क्या डरते हो? बस, विद्रोहियों का दमन हो गया! अब अपनी स्त्री-कन्या का कलकत्ते से बुला लो।

इस पर डॉनीवर्थ ने उत्तर दिया- ऐसा ही होगा! आप दस दिन यहां ठहरिये, देश को जरा और शांत होने दीजिये, फिर बुला लेंगे।

डॉनीवर्थ के पास पल्टन की मुर्गियॉ पली हुई थी और उनके यहां का पानी भी बहुत अच्छा था। विभिन्न वन्यपक्षी उनके टेबुल की शोभा बढ़ाते थे। दाढ़ीवाला बावर्ची मानो द्वितीय द्रौपदी था। अत: बिना कुछ बोले-चाले कप्तान टॉमस वहीं डटे रहने लगे।

इधर भवानंद मन ही मन व्यस्त है कि कब इस कप्तान का सर काटकर द्वितीय शम्बरारि की उपाधि धारण करूं । अंग्रेज इस समय भारतोद्वार के लिए(?) आये हैं, ये संतानगण तब तक समझ न सके थे। कैसे समझते? कप्तान टॉमस के सम-सामयिक भी उस समय यह न समझ सके थे कि भारतवर्ष पर हमारा राज्य स्थापित हो सकेगा। उस समय भविष्य तो विधाता ही जानते थे! भवानंद मन में सोचते थे कि इस असुर- वंश का एक दिन में निपात करूंगा; सब एकचित हो जाएं और जरा असतर्क सन्तान लोग अलग रहे। यही विचारक सब अलग रहे। उधर कप्तान टॉमस द्रौपदी गुण-ग्रहण में संलग्न थे।

साहब बहादुर शिकार के बड़े शौकीन थे। वे कभी-कभी शिवग्राम के निकट के जंगल में शिकार खेलने निकल जाते थे। एक दिन डॉनीवर्थ के साथ अनेक शिकारियों को लेकर टॉमस शिकार के लिए निकल पड़े। कहना ही क्या है! टॉमस बड़े ही साहसी व्यक्ति हैं, बल-वीर्य में अंगरेजों में अतुलनीय है। इस जंगल में शेर, भालू आदि हिंसक जन्तुओं का बाहुल्य है। बहुत दूर निकल जानेपर साथ के शिकारियों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया कि निविड़ जंगल में हम न घुसेंगे; वे बोले- अब भीतर राह नहीं है, आगे जा न सकेंगे। डानीवर्थ भी ऐसे भयानक शेर के सामने पड़ चुके थे कि वे भी घुसने से मुकर गये। सब लोग लौटना चाहते थे। कप्तान टॉमस ने कहा- तुम लोग लौट जाओ, मैं न लौटूंगा। यह कहकर कप्तान साहब ने भयानक जंगल में प्रवेश किया। वस्तुत: उस जंगल में राह न थी।

घोड़ा आगे बढ़ न सकता था: लेकिन साहब ने अपना घोड़ा भी छोड़ दिया और कन्धे पर बन्दूक रखकर पांव पैदल आगे बढ़े। घने जंगल में प्रवेश कर इधर उधर शेर की खोज करने लगे; पर शेर कहीं न था। फिर देखा क्या- एक बड़े पेड़ के नीचे, खिले पुष्पों की लता अपने शरीर से लपेटे हुए कौन बैठा हुआ था? एक नवीन संन्यासी बैठा अपने रूप से जंगल में उजाला किये हुए है। प्रस्फुटित पुष्प मानों उस शरीर का सानिध्य पाकर कुछ अधिक सुगन्धित हो गये है। कप्तान टॉमस को पहले तो विस्मय हुआ, फिर क्रोध आया। कप्तान साहब थोड़ी बहुत हिन्दी बोल लेते थे,बोले-टुम कौन?

संन्यासी ने कहा- मैं संन्यासी हूं।

कप्तान ने कहा - टुम रिबेल है?

संन्यासी- वह क्या?

कप्तान-हम टुमको गुली करके माड़ेगा।

सन्यासी-मारो।

आनन्दमठ भाग-8

मठ में जाकर और फिर भवानन्द जंगल में घुस गए। उस जंगल में एक जगह प्राचीन अट्टालिका का भग्नावशेष है। उस ढूहे पर घास-पात आदि जम आई है। वहां असंख्य सर्पो का वास है। ढूहे की जमीन अपेक्षाकृत साफ और ऊंची थी। भवानन्द उसी पर जाकर बैठे और चिंता में मग्न हो गए।

भयानक अंधेरी रात थी। उस पर वह जंगल अति विस्तृत, एकदम सूना जंगल वृक्ष-लताओं से घना और दुर्भेद्य, गमनागमन में दुष्कर है। आवाज आती भी है तो भूखे शेर की हुंकार, अन्यान्य पशुओं के भागने या बोलने का शब्द, कभी पक्षियों के पर फटफटाने की आवाज, तो कभी भागते हुए पशुओं के पैर की खरखराहट। ऐसे निर्जन स्थान में उस ढूहे पर अकेले भगवान बैठे हुए हैं। उनके लिए इस समय पृथ्वी है ही नहीं, या केवल उपादान मात्र है। भवानन्द निश्चल थे, श्वास-प्रश्वास अति सूक्ष्म, अपने में ही विलीन, माथे पर हाथ रखे बैठे थे। मन में सोचते थे-जोहोना होना है, अवश्य होगा। भागीरथी की जल-तरंगों के बीच क्षुद्र हाथी की तरह इंद्रिय-स्रोत में डूब गया, यही दु:ख है। एक क्षण में इंद्रियों का ध्वंस हो सकता है, शरीर-निपात कर देने से। मैं इसी इंद्रिय के वश में हो गया? मेरा मरना ही अच्छा है। धर्मत्यागी! छि :! छि :! मैं अवश्य मरूंगा। इसी समय माथे पर पेचक ने भयानक शब्द किया। भवानन्द अब खुलकर बड़बड़ाने लगे- यह कैसा शब्द? कान में ऐसा सुनाई पड़ा, मानो भय का आह्वान हो। मैं नहीं जानता, मुझे कौन बुलाता-यह किसका शब्द है? किसने राह बतायी, किसने मरने के लिए कहा? पुण्यमय अनन्त! तुम शब्द-शब्दमय हो; लेकिन तुम्हारे शब्द का अर्थ तो मैं समझ नहीं पाता हूं।

इसी समय भीषण जंगल में से मधुर साथ ही गंभीर, प्रेम भरा मनुष्य-कष्ठ सुनाई दिया- आशीर्वाद देता हूं, धर्म में तुम्हारी मति अवश्य होगी!

भवानन्द के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये-यह क्या? यह तो गुरुदेव की आवाज है-

महाराज! आप कहां है? इस समय सेवक को दर्शन दीजिये।

लेकिन किसी ने भी दर्शन न दिया, किसी ने भी उत्तर न दिया। भवानन्द ने बार-बार

बुलाया, लेकिन कोई उतर न मिला। इधर-उधर खोजा, कहीं कोई न था।

रात बीतने पर जब जंगल में प्रभात का सूर्य उदय हुआ-जंगल में प्रभात का सूर्य उदय हुआ-जंगल में पत्तों की हरियाली जब चमक उठी, तब भवानन्द मठ में वापस आ गए। उनके कानों में आवाज पहुंची- हरे मुरारे! हरे मुरारे! पहचान गए कि यह सत्यानन्द की आवाज है। समझ गए कि प्रभु वापस आ गए!

जीवानन्द के कुटी से बाहर चले जाने पर शान्ति देवी फिर सारंगी लेकर मृदु स्वर में गाने लगी-प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं

विहित वहित्र चरित्रमखेदं,

केशवधूत मीन शरीर,

जय जगदीश हरे!

गोस्वामी विरचित स्तोत्र को जिस समय सारंगी की मधुर ध्वनि पर कोमल स्वर से शांति गाने लगी, उस समय वह स्वर-लहरी वायुमण्डल पर इस तरह तंरगित हो उठी, जिस तरह जल में अवगाहन करने पर स्रोत वाहिनी नदी में धार कुण्डलाकार होकर लहराने लगती है। शांति गाने लगी!

निन्दसि यज्ञविधेरह: श्रृतिजात

सदस्य हृदय दर्शित पशुघातम,

केशव धुत बुद्ध शरीर

जय जगदीश हरे!

इसी समय किसी ने बाहर से गंभीर स्वर में-मेघगर्जन के समान गंभीर स्वर में गाया!

म्लेच्छ निवहनिधने कलपयसि करवालम्

धूमकेतुमिति किमपि करालम्

केशवधृत कल्कि शरीर

जय जगदीश हरे।

शांति ने भक्ति-भाव से प्रणत होकर सत्यानन्द के पैरों की धूलि ग्रहण की और बोली-

प्रभो! मेरा ऐसा कौन-सा भाग्य है कि श्री पादपद्मों का यहां दर्शन मिला। आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा? यह कहकर शांति ने फिर स्वर-लहरी छेड़ी!

भवचरणप्रणता वयमिति भावय

कुरु कुशल प्रणतेषु।

सत्यानन्द ने कहा- तुम्हें मैं पहचानता न था, बेटी! रस्सी की मजबूती न जानकर मैंने उसे खींचा था। तुम मेरी अपेक्षा ज्ञानी हो। इसका उपाय तुम्ही कहो। जीवानन्द से न कहना कि मैं सब कुछ जानता हूं। तुम्हारे प्रलोभन से वे अपनी जीवन-रक्षा कर सकेंगे-इतने दिनों से कर ही रहे हैं ऐसा होने से मेरा कार्योद्धार हो जाएगा।

शांति के उन विशाल लोल कटाक्षों में निदाघ-कादम्बिनी में विराजित बिजली के सामान घोर रोष प्रकट हुआ। उसने कहा-

यह क्या कहते हैं महाराज! मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं। मरना होगा तो वे मरेंगे ही, इसमें मेरा नुकसान ही क्या है। मैं भी तो साथ मरूंगी! उन्हें स्वर्ग मिलेगा तो क्या मुझे स्वर्ग न मिलेगा?

ब्रह्मचारी ने कहा-देवी! मैं कभी हारा न था, आज तुमसे तर्क में हार मानता है। मां ! मैं तुम्हारा पुत्र हैं-संतान पर स्नेह रखो। जीवानन्द के प्राणों की रक्षा करो। इसी से मेरा कार्योद्धार होगा।

बिजली हंसी। शांति ने कहा-मेरे स्वामी धर्म मेरे स्वामी के ही हाथ है। मैं उन्हें धर्म से विरत करनेवाली कौन हूं? इहलोक में स्त्री का देवता पति है : किंतु परकाल में सबका पिता धर्म होता है। मेरे समीप मेरे पति बड़े हैं उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है-उससे भी बढ़कर मेरे लिए पति का धर्म है। मैं अपने धर्म को जिस दिन चाहूं जलांजलि दे सकती हूं, लेकिन क्या

स्वामी के धर्म को जलांजलि दे सकती हूं? महाराज! तुम्हारी आज्ञा पर मरना होगा तो मेरे स्वामी मरेंगे, मैं मना नहीं कर सकती।

इस पर ब्रह्मचारी ने ठंडी सांस भरकर कहा-मां! इस घोर व्रत में बलिदान ही है। हम सबको बलिदान चढ़ाना पड़ेगा। मैं मरूंगा जीवानन्द, भवानन्द-सभी मरेंगे, शायद तुम भी मरोगी। किन्तु देखो, कार्य पूरा करके ही मरना होगा, बिना कार्य के मरना किस काम का? मैंने केवल जन्मभूमि को ही मां माना था और किसी को भी मां नहीं कहा, क्योंकि सुजला-सुफला माता के अतिरिक्त मेरी और कोई माता नहीं। अब तुम्हें भी मां कहकर पुकारा है। तुम माता होकर हम संतानों का कार्य सिद्ध करो। जिससे हमारा कार्योद्धार हो वहीं करो-जीवानन्द की प्राण-रक्षा करना, अपनी रक्षा करना!

यही कहकर सत्यानन्द-हरे मुरारे, मधुकैटभारे? गाते हुए चले गये।

इसके बाद तो दस हजार सन्तान सैन्य वन्देमातरम् गाती हुई, अपने भाले आगे कर तीर की तरह तापों पर जा पड़ी। यद्यपि वे लोग गोले और गोलियों की बौछार से क्षत-विक्षत हो चुके थे, लेकिन पलटे नहीं, भागे नहीं घनघोर युद्ध शुरू हो गया। लेकिन इसी समय रण-कुशल टॉमस की आज्ञा से एक सेना बन्दूकों पर संगीनें चढ़ाकर पीछे से निकलकर संतानों के दाहिने बाजू पर गिरी। अब जीवानन्द ने कहा-भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब सन्तान-सैन्य को नाश करने की जरूरत नहीं लौटाओ इन्हें।

भवानन्द -अब कैसे लौट सकते है? अब तो जो पीछे पलटेगा, वही मारा जाएगा।

जीवानन्द - सामने और दाहिने से आक्रमण हो रहा है। आओ, धीरे-धीरे बाएं होकर निकल चलें।

भवानन्द -बाएं घूमकर कहां जाओगे? बाएं नदी है - वर्षा से भरी हुई नदी। इधर गोले से बचोगे, तो नदी में डूबकर मरोगे।

जीवानन्द -मुझे याद है, नदी पर एक पुल है।

भवानन्द - लेकिन इतनी संख्या में सन्तान जब पुल पर एकत्र हो जाएंगे, तो एक ही तोप उनका समूल नाश कर देगी।

जीवानन्द - तब एक काम करो। आज तुमने जो शौर्य दिखाया है, उससे तुम सब कुछ कर सकते हो। थोड़ी सेना के साथ तुम सामना करो। मैं अवशिष्ट सेना को बाएं घुमाकर निकाल ले जाता हूं। तुम्हारे साथ की सेना तो अवश्य ही विनष्ट होगी, लेकिन अवशिष्ट सन्तान सेना नष्ट होने से बच जाएगी।

भवानन्द -अच्छा, मैं ऐसा ही करूंगा।

इस तरह दो हजार सैनिकों के साथ भवानन्द के सामने से फिर गोलन्दाजों पर आक्रमण किया।

उनमें अपूर्व उत्साह था। घोरतर युद्ध होने लगा। गोलन्दाज सेना उनके विनाश में और तोप-रक्षा में संलग्न हुई। सैकड़ों सन्तान कट-कटकर गिरने लगे। लेकिन प्रत्येक सन्तान अपना बदला लेकर मरता था।

इधर अवसर पाकर जीवानन्द अवशिष्ट सेना के साथ बाएं मुड़कर जंगल के किनारे से आगे बढ़े। कप्तान टॉमस के सहकारी लेफ्टिनेंट वाटसन ने देखा कि सन्तानों का बहुत बड़ा दल भागने की चेष्टा में बाएं घूमकर जाना चाहता है। इस पर उन्होंने देशी सिपाहियों की सेना लेकर उनका पीछा किया।

कप्तान टॉमस ने भी यह देखा। सन्तान-सेना का प्रधान भाग इस तरह गति बदल रहा है- यह देखकर उन्होंने सहकारी से कहा - मै दो-चार सौ सिपाहियों के साथ सामने की सेना को मारता हूं, तुम शेष सेना के साथ उन पर धावा करो। बाएं से वाटॅसन जाते हैं, दाहिने से तुम जाओ। और देखो, आगे जाकर पुल का मुंह बन्द कर देना। इस तरह वे सब तरह से घिर जाएंगे। तब उन्हें फंसी चिडिया की तरह मार गिराओ। देखना, देशी फौज भागने में बड़ी तेज होती है, अत: सहज ही उन्हें फंसा न पाओगे। अश्वारोही सेना को व न सके अन्दर से छिपकर पहले पुल के मुंह पर पहुंच जाने को कहो, तब वे फंस सकेंगे।?

कप्तान टॉमस ने, जो कुशल सेनापति था, अपने अहंकार के वश होकर यहीं भूल की। उसने सामने की सेना को तृणवत समझ लिया था। उसने केवल दो सौ पदतिक सैनिकों को अपने पास रहने दिया और शेष सबको भेज दिया। चतुर भवानन्द ने जब देखा कि तोप

के साथ समूची सेना उधर चली गयी और सामने की छोटी सेना सहज ही वध्य है, तो उन्होंने अपनी सेना को जोश दिलाया - क्या देखते हो, सामने मुट्ठी भर अंगरेज हैं, मारो! इस पर वह संतान सेना टॉमस की सेना पर टूट पड़ी। उस आक्रमण को थोड़े-से अंगरेज सह न सक; मूली की तरह वे कटने लगे। भवानन्द ने स्वयं जाकर कप्तान टॉमस को पकड़ लिया। कप्तान अंत तक युद्ध करता रहा। भवानन्द ने कहा - कप्तान साहेब! मैं तुम्हें मारुंगा नहीं, अंगरेज हमारे शत्रु नहीं है। क्यों तुम मुसलमानों की सहायता करने आये? तुम्हें प्राणदान तो देता हूं, लेकिन अभी तुम बन्दी अवश्य रहोगे। अंगरेजों की जय हो, तुम हमारे मित्र हो।

कप्तान ने भवानन्द को मारने के लिए संगीन उठायी, लेकिन भवानन्द से शेर की तरह जकड़े हुए थे, वह हिल न सका। तब भवानन्द रासने अपने सैनिकों से कहा -बांधो इन्हें। दो-तीन सन्तानों ने टॉमस को बांध लिया। भवानन्द ने कहा - इन्हें घोड़े पर बैठाकर ले चलो। हम लोग जीवानन्द की सहायता को जाते हैं।

इसी तरह वह अल्पसंख्यक सन्तान-सेना कप्तान टॉमस को कैदी बनाकर घोड़े पर चढ़ भवानन्द के साथ जीवानन्द की सहायता के लिए आगे बढ़ी।

जीवानन्द की सेना का उत्साह टूट चुका था, वह भागने को तैयार थी। लेकिन जीवानन्द और धीरानंद ने उन्हें समझाकर किसी तरह ठहराया। परन्तु सब सेना को जीवानन्द और धीरानंद पुल की तरफ ले गये। वहां पहुंचते ही एक तरफ से हेनरी ने और दूसरी तरफ से वाटसन ने उन्हें घेर लिया। अब सिवा युद्ध के परित्राण न था। इधर सेना भग्नोत्साह थी।

रण-विजय के उपरान्त नदी तट पर सत्यानंद को घेरकर विजयी सेना विभिन्न उत्सवों में मत्त हो गयी। केवल सत्यानन्द दु:खी थे, भवानन्द के लिए।

अब तक संतानों के पास कोई रण-वाद्य नहीं था। अब न मालूम कहां से हजारों नगाड़े, ढोल, भेरी, शहनाई, तुरी, रामसिंघा, दमामा आ गये। तुमुल ध्वनि से नदी, तटभूमि और

जंगल कांप उठा। इस प्रकार संतानों ने बहुत देर तक विजय का उत्सव मनाया। उत्सव के उपरांत सत्यानन्द स्वामी ने कहा-आज भगवान सदय हुए हैं; संतानों की विजय हुई है; धर्म की जय हुई है। लेकिन अभी एक बात बाकी है। जो हमलोगों के साथ इस उत्सव में शरीक न हो सके, जिन्होंने हमारे उत्सव के लिए प्राण उत्सर्ग किए किए हैं, उन्हें हम लोगों को भूलना न चाहिए-विशेषत: उस वीराग्रगण्य भवानन्द को, जिसके अदम्य रण-कौशल से आज हमारी विजय हुई है। चलो, उसके प्रति हमलोग अपना अन्तिम कर्त्तव्य कर आएं।

यह सुनते ही संतानगण बड़े समारोह से वन्देमातरम आदि जय-ध्वनि करते हुए रणक्षेत्र में पहुंचे। वहां उन लोगों ने चंदन-चिता सजा कर आदरपूर्वक भवानन्द की लाश सुलाई और आग लगा दी। इसके बाद वे लोग उस वीर की प्रदक्षिणा करते हुए वन्देमातरम् का गीत गाते रहे। संतान-सम्प्रदाय विष्णुभक्त हैं, वैष्णव सम्प्रदाय नहीं। अत: इनके शव जलाए ही जाते थे।

इसके उपरांत उस कानन में केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेंद्र, नवीनानन्द और धीरानन्द रह गए। यह पांचों जन परामर्श के लिए बैठ गए। सत्यानन्द ने कहा-इतने दिनों से हम लोगों ने अपने सर्वकर्म, सर्वसुख त्याग रखे थे, आज यह व्रत सफल हुआ है। अब इस प्रदेश में यवन सेना नहीं रह गयी है। जो थोड़ी-बहुत बच गयी है, वह एक क्षण भी हमारे सामने टिक नहीं सकती। अब तुम लोग क्या परामर्श देते हो?

जीवानन्द ने कहा-चलिये, इसी समय चलकर राजधानी पर अधिकार करें।

सत्यानन्द-मेरा भी ऐसा मत है।

धीरानन्द-सेना कहां है?

जीवानन्द-क्यों, यही सेना!

धीरानन्द-यही सेना है कहां? किसी को देख रहे हैं?

जीवानन्द-स्थान-स्थान पर ये लोग विश्राम कर रहें होंगे; डंके पर चोट पड़ते ही इकट्ठे हो जाएंगे।

धीरानन्द-एक आदमी भी न पा सकेंगे।

सत्यानन्द-क्यों?

धीरानन्द-सब इस समय लूट-पाट में व्यस्त हैं। इस समय सारे गांव आरक्षित है। मुसलमानों के गांव और रेशम की कोठी लुटने के बाद ही वे लोग घर लौटेंगे। अभी किसी को न पाएंगे, मैं देख आया हूं।

सत्यानन्द दुखी हुए बोले-जो भी हो, इस समय यह समूचा प्रदेश हमारे अधिकार में आ गया है। अब यहां कोई हमारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। अतएव इस वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग अपना सन्तान-राज्य प्रतिष्ठित करो। प्रजा से कर वसूल करो और सैन्य-संग्रह करो। हिन्दुओं का राज्य हो गया है, यह सुनकर बहुतेरी संतान-सैन्य तुम्हारे झण्डे के नीचे आ जाएगी।

इस पर जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम किया और कहा-यदि आज्ञा हो महाराजाधिराज! तो हम लोग इसी जंगल में आपका सिंहासन स्थापित कर सकते हैं।

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह प्रथम बार क्रोध प्रकट किया बोले-क्या कहा? क्या मुझे केवल कच्चा घड़ा ही समझ लिया है? हमलोग कोई राजा नहीं है, हम केवल संन्यासी हैं। इस प्रदेश के राजा स्वयं बैकुण्ठनाथ है, जहां प्रजातन्त्र-राज्य स्थापित होगा। नगर अधिकारी के बाद तुम्ही लोग कार्यकर्ता होगे। मैं तो ब्रह्मचर्य-शक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार न करूंगा। अब तुम लोग अपने-अपने काम में लगो।

इसी समय टॉमस की तोपें पास आ पहुंची। अब सन्तानों का दल छिन्न-भिन्न होने लगा। उन्हें प्राण-रक्षा की कोई आशा न रही। जिसे जिधर राह मिली, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हें बहुत संयत करने की चेष्टा की, लेकिन कोई फल न हुआ, संतानों का दल तितर-बितर होने लगा। इसी समय ऊंची आवाज में सुनाई दिया - पुल पर जाओ, पुल पर जाओ! उस पार चले जाओ, अन्यथा नदी में डूब मरोगे। अंगरेजों की सेना की तरफ मुंह किये हुए पुल पर चले जाओ!

जीवानन्द ने देखा कि कहनेवाले भवानंद सामने हैं। भवानन्द ने कहा,-जीवानन्द, तुम सेना को पुल पर ले जाओ। दूसरे प्रकार से रक्षा नहीं है। यह सुनते ही संतान-सेना क्रमश: पुल पर पहुंचने लगी। थोड़ी ही देर में समूची संतान-सेना पुल पर जा पहुंची। भवानन्द, जीवानन्द धीरानन्द सब एकत्र थे। भवानन्द ने जो कुछ कहा था, वही हुआ। अंगरेजों की तोपें पुल के मुंह पर लगी थी और वे गोले उगलने लगीं। भयानक संतान-क्षय होने लगा। यह देखकर भवानन्द ने कहा - जीवानन्द! यह एक तोप हमारा नाश कर डालेगी! क्या देखते हो, जाओ हम तीनों उस पर टूटकर अधिकार लें।

भवानंद के यह कहते ही जय नाद उठा -वन्देमातरम! और उसी समय तीन तलवारें पुन: सिरों पर घूम उठीं। तोपची तमाशा ही देखते रह गये। हेनरे और वासटन दूर खड़े अहंकार और प्रसन्नता में इसे खिलवाड़ और मूर्खता समझते रहे। किन्तु इसी समय रण का पास पलट गया। पलक मारते ही तीनों सन्तान-नायक तोपचियों पर जा पड़े। तोपचियों के सिर धड़ से कब जुदा हुए कुछ पता नहीं। उनकी मोह-निद्र टूटी तब, जब बिजली की तरह तलवार चमकाते हुए भवानन्द स्वयं तोप पर खड़े हो गये और बोल -वन्देमातरम्! सहस्त्रों कंठों से निकला -वन्देमातरम्! उसी समय जीवानन्द ने तोप का मुंह अंगरेजी सेना की तरफ कर दिया और तोप प्रति-क्षण आग उगलने लगी। अब भवानंद ने कहा - जीवानंद भाई! यह क्षणिक जीत है, अब तुम संतानों को लेकर सकुशल पार चले जाओ। केवल बीस तोप भरनेवाले और मृत्यु का वरण करनेवाले संतानों को तोप की रक्षा के लिए छोड़ दो।

ऐसा ही हुआ। बीस संतान तोप के इर्द-गिर्द आ डटे। शेष समूची सेना जीवानन्द और धीरानन्द के साथ पार पहुंचने लगी। उस समय भवानंद क्रुद्ध गजराज हो रहे थे। पुल की संकरी जगह पर तोप लगाकर वे लगे गोरी वाहिनी का नाश करने। दल-के-दल तोप छीनने के लिए आगे बढ़ते थे और मरकर ढेर बन जाते थे। उस समय वे बीस युवक अजेय थे। ये लोग शीघ्रता इसलिए कर रहे थे कि अंगरेजों की शेष तोपें पहुंचने के पहले तक ही यह सारी अजेय लीला है। लेकिन भगवान को तो कुछ और ही करना था। एकाएक जंगल के अन्दर से बहुत-सी तोपों का गर्जन सुनाई पड़ने लगा। दोनों ही दल अवाक-रिस्पन्द होकर देखने लगे कि ये किसकी तोपें हैं?

थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि जंगल के अन्दर से महेन्द्र की सत्रह तोपें, तीन तरफ से

घेरा, बांधे हुए आग उगलती चली आ रही हैं। अंगरेजों की उस देशी फौज में महामारी आ गयी- दल-के-दल साफ होने लगे। यह देख शेष यवन-सिपाही भागने लगे। उधर जीवानंद और धीरानन्द ने भी जैसे ही वातावरण समझा, तैसे ही उनका सारा क्रोध पलट पड़ा और पलट पड़ी सन्तान-सेना। वे भागती हुई यवन-सेना को घेरने और मारने लगे। अवशिष्ट रह गये यही कोई तीस-चालीस गोरे। वह वीर जाति वैसे ही डटी रही। अब भवानन्द ने उन पर धावा बोलने के लिए हाथ उठाया ही था कि जीवानन्द ने कहा - भवानन्द! महेन्द्र की कृपा से पूर्ण रण-विजय हुई है; अब व्यर्थ इन्हें मारने से क्या फायदा? चलो लौट चलें।

भवानन्द ने कहा - कभी नहीं,जीवानंद! तुम खड़े होकर तमाशा देखो। एक के भी जिंदा रहते भवानन्द वापस नहीं हो सकता। जीवानन्द! तुम्हें कसम है, खड़े होकर चुपचाप देखो। मैं अकेले इन सबको मारुंगा।

अभी तक कप्तान टॉमस घोड़े पर बंधे हुए थे। भवानन्द ने आक्रमण के समय कहा - उस अंगरेज को मेरे सामने रखो; पहले यह मरेगा, फिर मै मरुंगा।

टॉमस हिन्दी समझता था। उसने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी- वीरों! मै तो मरे के समान हूं। इंगलैण्ड की मान-रक्षा करना, तुम्हें मातृभूमि की कसम है! पहले मुझे मारो, इसके बाद प्रत्येक अंगरेज मारकर अपनी जगह मरे।

धांय एक शब्द हुआ और तुरन्त कप्तान टॉमस मस्तक में गोली लगने से मरकर गिर पड़ा। यह गोली उसी के एक सिपाही द्वारा चलायी गयी थी। इसके बाद उन सबने आक्रमण किया। अब भवानन्द ने कहा -आओ भाई! अब कौन ऐसा है जो भीम, नकुल, सहदेव बनकर मेरे साथ मरने को तैयार है?

इतना कहते ही जीवानंद, धीरानंद और लगभग पचीस जवान आ पहुंचे। घोर युद्ध हो रहा था। तलवारें रही थीं। धीरानंद, भवानंद के पास थे। धीरानंद ने कहा-भवानंद! क्यों? क्या मरने का किसी का ठेका है क्या? यह कहते हुए धीरानंद ने एक गोरे को आहत किया।

भवानंद-यह बात नहीं? लेकिन मरने पर तो तुम स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिता न पाओगे!

धीरानंद-दिल की बात कहते हो? अभी भी नहीं समझे? (धीरानंद ने आहत गोरे का वध किया)।

भवानंद-नहीं(इसी समय एक गोरे के आघात से भवानंद का बायां हाथ कट गया।)

धीरानंद-मेरी क्या मजाल थी कि तुम जैसे पवित्रात्मा से यह बातें मैं कहता? मैं सत्यानंद का गुप्तचर हो कर तुम्हारे पास गया था?

भवानंद उस समय केवल एक हाथ से युद्ध कर रहे थे। बोले-यह क्या? महाराज का मेरे प्रति अविश्वास?

धीरानंद ने उनकी रक्षा करते हुए कहा-कल्याणी के साथ तुम्हारी जितनी बातें हुई थी,सब उन्होंने स्वयं अपने कानों से सुनी।

भवानंद-यह कैसे?

धीरानंद-वे स्वयं वहां उपस्थित थे। सावधान बचो!(भवानंद ने एक गोरे द्वारा आहत होकर उसे आहत किया) वे कल्याणी को गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम आ गए। सावधान! (लेकिन इसी समय भवानंद का दाहिना हाथ भी कट गया।)

भवानंद-मेरी मृत्यु का समाचार उन्हें देना। कहना- मैं अविश्वासी नहीं हूं।

धीरानंद आंखों से आंसू भरे हुए युद्ध कर रहे थे। बोले-यह वे जानते हैं। उन्होंने मुझसे कह दिया है कि भवानंद के पास रहना, आज वह मरेगा। मृत्यु के समय उससे कहना कि मैं आशीर्वाद देता हूं, परलोक में तुम्हें बैकुण्ठ प्राप्त होगा।

भवानंद ने कहा-संतानों की जय हो! मुझे एक बार मरते समय वन्देमातरम् गीत तो सुनाओ।

इस पर धीरानंद की आज्ञा पाकर समस्त उन्मत्त संतानों ने एक साथ वन्देमातरम् गीत गाया। इससे उनकी भुजाओं में दूना बल आ गया। इतनी देर में अवशिष्ट गोरों का वध हो चुका था। रणक्षेत्र में एक भी शतु न रह गया।

हा! रमणी के रूप-लावण्य! ..इस संसार में तुझे ही धिक्कार है!

क्रमश: सन्तान समप्रदाय में समाचार प्रचारित हुआ कि सत्यानन्द आ गये हैं और सन्तानों

से कुछ कहना चाहते हैं। अत: उन्होंने सबको बुलवाया है। यह सुनकर दल-के-दल सन्तान लोग आकर उपस्थित होने लगे। चांदनी रात में नदी-तट पर देवदारु के वृहत् जंगल में आम, पनस, ताड़, वट, पीपल, बेल, शाल्मली आदि पेड़ों के नीचे करीब दस सहस्त्र सन्तान आ उपस्थित हुए। सब आपस में सत्यानन्द के लौट आने का समाचार सुनकर महाकोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किसलिए वहां गये थे- यह साधारण लोग जानते न थे। अफवाह थी कि वे सन्तानों की मंगलकामना से प्रेरित होकर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने ासगये थे। सब आपस में कानाफूसी करने लगे-

महाराज की तपस्या सिद्ध हो गयी है- अब हम लोगों का राज्य होगा। इस पर बड़ा कोलाहल होने लगा। कोई चीत्कार करने लगा-मारो-मारो, पापियों को मारो। कोई कहता-जय-जय! महाराज की जय! कोई गाने लगा- हरे मुरारे मधुकैटभारे ! किसी ने वंदेमारम गाना गाया। कोई कहता-भाई! ऐसा कौन दिन होगा कि तुच्छ बंगाली होकर भी मैं रणक्षेत्र में शरीर उत्सर्ग करूंगा। कोई कहता-- भाई ! ऐसा कौन दिन होगा कि अपना ही धर्म हम स्वयं भोग करेंगे। इस तरह दस सहस्त्र मनुष्यों के कण्ठ-स्वर से निकली गगनभेदी ध्वनि जंगल, प्रान्त, नदी, वृक्ष, पहाड़ सब कांप उठे।

एकाएक शब्द हुआ- वन्देमातरम और लोगों ने देखा कि ब्रह्मचारी सत्यानन्द सन्तानों के मध्य आकर खड़े हो गये। इस समय दस सहस्त्र-मस्तक उसी चांदनी में वनभूमि पर प्रणत हो गये। बहुत ही ऊंचे स्वर में, जलद गंभीर शब्दों में सत्यानन्द ने दोनों हाथ उठाकर कहा-शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाली बैकुण्ठनाथ जो केशिमथन मधु-मुर-नरकमर्दन, लोक-पालक है वे तुम लोगों के बाहुओं में बल प्रदान करें, मन में भक्ति दें, धर्म में शक्ति दें! तुम सब लोग मिलकर एक बार उनका गुणगान करो।

इस पर दस सहस्त्र कण्ठों से एक साथ गान होने लगा।

जय जगदीश हरे।

प्रलयपयोधि जले धृतवानसि वेदं

विदित विहिवमखेदम

जय जगदीश हरे।

इसके उपरान्त सत्यानन्द महाराज उन लोगों को पुन: आशीर्वाद प्रदान कर बोले-

संतानों! तुम लोगों से आज मुझे कुछ विशेष बात कहनी है। टॉमस नाम के एक विधर्मी दुराचारी ने अनेक संतानों का नाश किया है। आज रात हम लोग उसका ससैन्य वध करेंगे! जगदीश्वर की ऐसी ही आज्ञा है। तुम लोग क्या चाहते हो?

भयानक हर्षध्वनि से जंगल विदीर्ण उठा- अभी मारेंगे! बताओ, चलो, उन सबको दिखा दो। मारो! मारो! शत्रुओं का नाश करो? इसी तरह के शब्द दूर के पहाड़ों से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगे। इस पर सत्यानन्द फिर कहने लगे- उसके लिए हम हम लोगों को जरा धैर्य धारण करना पड़ेगा। शत्रुओं के पास तोप है; बिना तोप के उनके साथ युद्ध हो नहीं सकता। विशेषत: वे सब वीर-जाति के हैं। हमारे पदचिन्ह दुर्ग से 17 तोपें आ रही हैं। तोपों के पहुंचते ही हम लोग युद्ध आरंभ करेंगे। यह देखो, प्रभात हुआ चाहता है। ब्रह्ममुहूर्त के 4 बजते ही..लेकिन यह क्या--

गुड्डम-गुड्डम-गुम! अकस्मात् चारों तरफ विशाल जंगल में तोपों की आवाज होने लगी। यह तोप अंगरेजों की थी। जाल में पड़ी हुई मछली की तरह कप्तान टॉमस ने सन्तानों को इस जंगल में घेरकर वध करने का उद्योग किया था।

गुड्डम गुड्डम गुम! -- अंगरेजों की तोपें गर्जन करने लगीं। वह शब्द समूचे जंगल में प्रतिध्वनित होकर सुनाई पड़ने लगा। वह ध्वनि नदी के बांध से टकराकर सुनाई पड़ी। सत्यानन्द ने तुरंत आवाज दी- देखो, किसकी तोपें हैं? कई सन्तान तुरंत घोड़े पर चढ़कर देखने के लिए चल पड़े। लेकिन उन लोगों के जंगल से निकलते ही उन पर सावन की बरसात के समान गोले आकर पड़े। अश्वसहित उन सबने वहीं अपना प्राण त्याग किया। दूर से सत्यानन्द ने देखा, बोल - पेड़ पर चढ़कर देखो! उनके कहने के साथ जीवानन्द ने एक पेड़ पर ऊंचे चढ़कर बताया-अंगरेजों की तोपें! सत्यानन्द ने पूछा -अश्वारोही सैन्य हैं या पदातिक?

जीवानन्द -दोनों हैं?

सत्यानन्द - कितने हैं?

जीवानन्द -अन्दाज नहीं लग सकता। वे सब जंगल की आड़ से बाहर आ रहे हैं?

सत्यानन्द -गोरे हैं या केवल देशी फौज?

जीवानन्द - गोरे हैं।

अब सत्यानन्द ने कहा - तुम पेड़ से उतर आओ। जीवानन्द पेड़ से उतर आये।

सत्यानन्द ने कहा - तुम दस हजार सन्तान यहां उपस्थित हो। देखना है, क्या कर सकते हो! जीवानन्द ! आज के सेनापति तुम हो।

जीवानन्द हर्षोत्फुल्ल होकर एक छलांग में घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने एक बार नवीनानन्द की तरफ ताककर इशारे में ही कुछ कहा-कोई उसे समझ न सका। नवीनानन्द ने भी इशारे में ही उत्तर दिया। केवल वे दोनों ही आपस में समझ गये कि शायद इस जीवन में यह आखिरी मुलाकात है; पर नवीनानन्द ने दाहिनी भुजा उठाकर लोगों से कहा-भाइयों! समय है, गाओ -- जय जगदीश हरे! दस सहस्त्र सन्तानों के मिलित कण्ठ ने आकाश, भूमि, वन-प्रांत को कंपा दिया। तोप का शब्द उस भीषण हुंकार में डूब गया। दस सहस्त्र सन्तानों ने भुजा उठाकर गाया--

जय जगदीश हरे!

म्लेछ निवहनिधने कलयसि करवालम्

इसी समय अंगरेजों की गोली-दृष्टि जंगल का भेदन करती हुई सन्तानों पर आकर पड़ने लगी। कोई गाता-गाता छिन्नमस्तक छिन्न-बाहु छिन्न-हृतपिण्ड होकर जमीन पर गिरने लगा। लेकिन गाना बन्द न हुआ, वे सब गाते ही रहे - जय जगदीश हरे!

गाना समाप्त होते ही सब निस्तब्ध हो गये। वह सारा वातावरण - नदी, जंगल, पहाड़ - एकदम निस्तब्ध हो गया। केवल तोपों का गर्जन गोरों के अस्त्रों की झंकार और पद-ध्वनि दूर से सुनाई पड़ने लगी।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सत्यानन्द ने कहा - भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। तोप कितनी दूरी पर है?

ऊपर से आवाज दी इसी जंगल के समीप एक छोटा मठ है, उसी के पास।

सत्यानन्द -तुम कौन हो?

ऊपर से आवाज आयी -मैं नवीनानन्द।

अब सत्यानन्द ने कहा - तुम लोग दस हजार हो , तुम्हारी विजय होगी! क्या देखते हो छीन लो तोपें!

यह सुनते ही अश्वारोही जीवानन्द ने आवाज दी - आओ भाइयों,मारो।

इस पर दस सहस्त्र सन्तान सेना, अश्वारोही और पदतिक, तीर की तरह धावा बोलती आगे बढ़ी। पदातिकों के कन्धे पर बन्दूक, कमर में तलवार और हाथ में भाले थे। बहुत-से सन्तानों ने बिना युद्ध किये ही गिरकर प्राण-त्याग किया। एक ने जीवानन्द से कहा - जीवानन्द! अनर्थक प्राणि-हत्या से क्या फायदा है?

जीवानन्द ने मुड़कर देखा, कहने वाले भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा - तब क्या करने को कहते हो?

भवानन्द -वन के अन्दर रहकर वृक्षों का आश्रय लेकर अपनी प्राण-रक्षा करें। तोपों के सामने खुले मैदान में बिना तोप की सन्तानसेना एक क्षण भी टिक न सकेगी। लेकिन जंगल में पेड़ों की आड़ लेकर हम लोग बहुत देर तक युद्ध कर सकते हैं।

जीवानन्द -तुम ठीक कहते हो! लेकिन प्रभु की आज्ञा है कि तोप छीन जाए। अत: हम लोग तोप छीनके ही जाएंगे।

भवानन्द - किसकी हिम्मत है कि तोप छीन सके। लेकिन यदि जाना ही है, तो तुम ठहरो, मै जाता हूं।

जीवानन्द - यह न होगा, भवानन्द! आज मेरे मरने का दिन है।

भवानन्द -आज मेरे मरने का दिन है।

जीवानन्द - मुझे प्रायश्चित करना होगा।

भवानन्द -तुम निष्पाप हो, तुम्हें प्रायश्चित की जरूरत नहीं। मेरा चरित्र कलुषित है; मुझे ही मरना होगा। तुम ठहरो, मैं जाता हूं।

जीवानन्द --भवानन्द, तुमसे क्या पाप हुआ है, मै नहीं जानता; लेकिन तुम्हारे रहने से सन्तानों का उद्धार होगा। मैं जाता हूं।

भवानन्द ने चुप होकर फिर कहा --मरना होगा तो आज ही मरेंगे, जिस दिन जरूरत होगी,उसी दिन मरेंगे। मृत्यु के लिए मुझे समय-काल की जरूरत नहीं।

जीवानन्द - तब आओ!

इस बात पर भवानन्द सबके आगे हुए। दल-के-दल, एक-एक-कर सन्तान गोले खाकर मरकर गिरने लगे। सन्तान-सैन्य बिखरने लगी। तीर की तरह आगे बढ़ते हुए सन्तान गोला खाकर कटे वृक्ष की तरह नीचे गिरते थे। सैकड़ों लाशें पट गयीं। इसी समय भवानन्द ने चिल्लाकर कहा -आज इस तरंग में संतानों को कूदना है कौन आता है भाई?

इस पर सहस्त्र-सहस्त्र कण्ठों से आवाज आयी-वन्देमातरम्! दनादन गोले आ रहे थे। तीर गिर रहे थे, लेकिन संतान सैन्य तीर की तरह आगे बढ़ती ही जाती थी। सबका लक्ष्य तोप छीनना था।

आनन्दमठ भाग-9

इस पर चारों व्यक्ति प्रणाम करने के बाद उठ गए। सत्यानंद ने इशारे से महेन्द्र को बैठे रहने के लिए कहा, अत: वे तीनों चले गए। अब सत्यानंद ने महेन्द्र से कहा- तुम लोगों ने विष्णुमण्डप में शपथ ग्रहण का सनातन धर्म स्वीकार किया था। भवानन्द और जीवानंद दोनों ने ही प्रतिज्ञा भंग की है। भवानन्द ने स्वीकृत प्रायश्चित कर लिया। हमें इस बात का भय है कि कहीं जीवानन्द भी किसी दिन प्रायश्चित न कर बैठे। लेकिन मेरा किसी निगूढ़ कारणवश विश्वास है कि वह अभी ऐसा न करेगा। अकेले तुम्ही ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। अब संतानों का कार्योद्धार हो गया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि जब तक संतानों का कार्योद्धार न होगा, स्त्री-कन्या का मुंह न देखोगे। अब कार्योद्धार हो चुका है, अत: तुम फिर संसारी हो सकते हो।

महेन्द्र की आंखों से आंसू की धारा बह निकली। बड़े कष्ट से महेन्द्र ने कहा- महाराज! किसे लेकर संसारी बनूं? स्त्री ने आत्म हत्या कर ली, कन्या कहां है- पता नहीं! कहां-कहां खोजता फिरूंगा? कुछ भी तो नहीं जानता।

इस पर सत्यानंद ने नवीनानंद को बुलाकर कहा- महेंद्र, ये नवीनानंद गोस्वामी हैं- बहुत ही पवित्रचेता और मेरे परम प्रिय शिष्य है। तुम्हारी कन्या की खोज कर देंगे। कहकर सत्यानंद ने शांति से कुछ इशारे से कहा। शांति समझकर प्रणाम कर विदा होना चाहती थी, इसी समय महेंद्र ने कहा-तुम्हारे साथ कहां मुलाकात होगी?

शांति ने कहा- मेरे आश्रम में आइये। यह कहकर शांति आगे-आगे चली।

महेंद्र भी सत्यानंद की पदवंदना कर विदा हुए, फिर शांति के साथ-साथ उसके आश्रम में उपस्थित हुए? उस समय काफी रात बीत चुकी थी। फिर भी विश्राम न कर शांति ने नगर की तरफ यात्रा की।

सबके चले जाने पर सत्यानंदन भूमि पर प्रणत होकर भगवान की वंदना और याद करने लगे। पौ फट रही थी। इसी समय किसी ने आकर उनके मस्तक का स्पर्श कर कहा- मैं आ गया हूं।

ब्रह्मचारी ने उठकर और चकित व्यग्रभाव से कहा- आप आ गए क्या!

जो आए थे उन्होंने कहा- दिन पूरे हो गए।

ब्रह्मचारी ने कहा- हे प्रभु! आज क्षमा कीजिए। आगामी माघी पूर्णिका को मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

उस रात को हरिध्वनि के तुमुल नाद से प्रदेश भूमि परिपूर्ण हो गई। संतानों के दल-के-दल उस रात यत्र-तत्र वंदेमातरम और जय जगदीश हरे के गीत गाते हुए घूमते रहे। कोई शत्रु-सेना का शस्त्र तो कोई वस्त्र लूटने लगा। कोई मृत देह के मुंह पर पदाघात करने लगा, तो कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा, कोई गांव की तरफ तो कोई नगर की तरफ पहुंचकर राहगीरों और गृहस्थों को पकड़कर कहने लगा- वंदेमातरम कहो, नहीं तो मार डालूंगा। कोई मैदा-चीनी की दुकान लूट रहा था, तो कोई ग्वालों के घर पहुंचकर हांडी भर दूध ही छीनकर पीता था। कोई कहता- हम लोग ब्रज के गोप आ पहुंचे, गोपियां कहां हैं? उस रात में गांव-गांव में, नगर-नगर में महाकोलाहल मच गया। सभी चिल्ला रहे थे- मुसलमान हार गये; देश हम लोगों का हो गया। भाइयों! हरि-हरि कहो!-गांव में मुसलमान दिखाई पड़ते ही लोग खदेड़कर मारते थे। बहुतेरे लोग दलबद्ध होकर मुसलमानों की बस्ती में पहुंचकर घरों में आग लगाने और माल लूटने लगे। अनेक मुसलमान ढाढ़ी मुंढ़वाकर देह में भस्मी रमाकर राम-राम जपने लगे। पूछने पर कहते-

हम हिंदू हैं।

त्रस्त मुसलमानों के दल-के-दल नगर की तरफ भागे। राज-कर्मचारी व्यस्त हो गए। अवशिष्ट सिपाहियों को सुसज्जित कर नगर रक्षा के लिए स्थान-स्थान पर नियुक्त किया जाने लगा। नगर के किले में स्थान-स्थान पर, परिखाओं पर और फाटक पर सिपाही रक्षा के लिए एकत्रित हो गए। नगर के सारे लोग सारी रात जागकर क्या होगा.. क्या होगा? करते रात बिताने लगे। हिंदू कहने लगे- आने दो, संन्यासियों को आने दो- हिंदुओं का राज्य- भगवान करें- प्रतिष्ठित हो। मुसलमान कहे लगे-इतने रोज के बाद क्या सचमुच कुरानशरीफ झूठा हो गया? हम लोगों ने पांच वक्त नवाज पढ़कर क्या किया, जब हिंदुओं की फतह हुई। सब झूठ है! इस तरह कोई रोता हुआ, तो कोई हंसता हुआ बड़ी उत्कंठा से

रात बिताने लगा।

यह खबर कल्याणी के कानों में भी पहुंची आबाल-वृद्ध-वनिता किसी से भी बात छिपी न रही। कल्याणी ने मन-ही-मन कहा- जय जगदीश हरे! आज तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ। आज मैं स्वामी-दर्शन के लिए यात्रा करूंगी। हे प्रभु! आज मेरी सहायता करो।

गहरी रात को कल्याणी शय्या से उठी और उसने पहले खिड़की खोलकर राह देखी। राह सूनी पड़ी हुई थी-कोई राह में न था। तब उसने धीरे से दरवाजा खोलकर गौरी देवी का घर त्यागा। शाही राह पर आकर उसने मन-ही-मन भगवान को स्मरण कर कहा- देव! आज पदचिन्ह का दर्शन करा दो।

कल्याणी नगर के किनारे पहुंची। पहरेवाला ने आवाज दी- कौन जाता है? कल्याणी ने डरकर उत्तर दिया- मैं औरत हूं! पहरेदार ने कहा- जाने का हुक्म नहीं है। वह आवाज जमादार के कान में पहुंची। उसने कहा- जाने की मनाही नहीं है; जाने की मनाही नहीं है। यह सुनकर पहरेवाले ने कहा- जाने की मनाही नहीं है, माई! जाओ, लेकिन आज रात को बड़ी आफत है। कौन जाने माई! किसी आफत में पड़ जाओ- डाकुओं के हाथ में पड़ जाओ, मैं नहीं जानता? आज तो न जाना ही अच्छा है।

कल्याणी ने कहा- बाबा! मैं भिखारिन हूं। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझे पकड़ कर क्या करेंगे?

पहरेवाले ने कहा- उम्र तो है, माई जी! उम्र तो है न! दुनिया में वही तो जवाहरात है। बल्कि हमी डाकू हो सकते है! कल्याणी ने देखा, बड़ी विपद है; वह धीरे से सरक गयी और फिर तेजी से आगे बढ़ी! पहरेदार ने देखा कि औरत रसिक मिजाज नहीं थी, लाचार होकर पहरे पर बैठा गांजे का दम लगाकर ही संतुष्ट हो गया।

एडवर्ड भी पक्का अंगरेज जेनरल था। छोटी घाटी में उसके आदमी थे-शीघ्र ही उन्हें खबर मिली कि उस वैष्णवी ने लिंडले को घोड़े से गिराकर स्वयं रास्ता लिया। सुनते ही एडवर्ड ने हुक्म दिया-टेंट उखाड़ो-उस शैतान का पीछा करो!

खटाखट तम्बुओं के खूंटों पर हथौड़े पड़ने लगे। मेघरचित अमरावती की तरह सवार घोड़ों पर और पदातिक पैदल चलने को तैयार हो गए। हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे, बंदूक कंधे पर लिए मच-मच चल पड़े। तापें खच्चरों द्वारा खींची जाकर घरर-घरर करती चल पड़ीं।

इधर महेंद्र संतान-सेना के साथ मेले की तरफ अग्रसर हुए। उसी दिन शाम को महेंद्र ने सोचा अंधेरा हो चला, अब शिविर डलवा देना चाहिए।

उसी समय पड़ाव डाल देना ही उचित जान पड़ा। संतानों का शिविर कैसा? पेड़ के तनों से लगकर छाया में सब चित-पट सो रहे। हरिचरणामृत पान कर डकार ली उन्होंने। जो कुछ भूख बाकी थी, स्वप्न में वैष्णवी के अधर-रस का पान कर उसे पूरा करने लगे। जहां पड़ाव पड़ा था, वहां बहुत सुंदर आम-कानन के पास ही एक बड़ा टीला था। महेंद्र ने सोचा कि इसी टीले पर यदि पड़ाव पड़े तो कितना सुखद हो! मन में हुआ कि टीले को देख लेना चाहिए।

यह सोचकर महेंद्र घोड़े पर चढ़कर धीरे-धीरे टीले पर चड़ने लगे। अभी तक टीले पर आधा ही चढ़े थे, कि उनकी संतान-सेना में एक युवक वैष्णव आ पहुंचा। उसने संतानों से कहा-चलो, टीले पर चढ़ चलें। उसके समीप जो सैनिक खड़े थे, उन्होंने पूछा-क्यों?

यह सुनकर वह योद्धा एक छोटी चट्टान पर खड़ा हो गया, उसने ललकारकर कहा-आओ, वीरों! आज इसी टीले पर चढ़कर चांदनी का आनंद और मधुर वन्य पुष्पों का सौरभ-पान करते हुए शत्रुओं से बदला लें..युद्ध करें। संतानों ने देखा कि यह योद्धा और कोई नहीं, हमारे सेनापति जीवानंद है। इस पर सारी सेना-हरे मुरारे! कहती हुई गगनभेदी जयोल्लास से हुंकार करती हुई, भालों पर बोझा दे उठ खड़ी हुई और जीवानंद के पीछे-पीछे टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा हुआ घोड़ा जीवानंद को लाकर दिया। दूर से महेंद्र ने जो यह देखा, तो विस्मित हुए। सोचने लगे- यह क्या? बिना कहे ये सब क्यों चले आ रहे हैं।

यह सोचकर महेंद्र ने तुरंत घोड़े का मुंह फिराया और एंड़ लगाते ही धूल बादल उड़ाते हुए नीचे आए। संतान-वाहिनी के अग्रवर्ती जीवानंद को देखकर उन्होंने पूछा-यह क्या आनंद?

जीवानंद ने हंसकर उत्तर दिया-आज बड़ा आनंद है। टीले के उस पार एडवर्ड पहुंच गए

है। टीले पर जो पहले पहुंचेगा, उसी की जीत होगी

इसके बाद जीवानंद ने संतान सेना से कहा-पहचानते हो? मैं जीवानंद हूं। मैंने सहस्त्र-सहस्त्र शत्रुओं का वध किया है।

तुमुल निनाद से दिगन्त कांप उठा। सैनिकों ने एक स्वर से कहा-पहचानते हैं, हम अपने सेनापति को पहचानते हैं।

जीवानंद-बोलो, हरे मुरारे!

जंगल का कोना-कोना कांप उठा, प्रतिध्वनित हुआ-हरे मुरारे

जीवानंद-वीरों! टीले के उस पार शत्रु है। आज ही इस स्तूप के ऊपर, विमल चांदनी में संतानों का महारण होगा। जल्दी चढ़ो- जो पहले चढ़ेगा, उसी की जीत होगी। बोलो-बन्देमातरम्

फिर प्रतिध्वनि हुई-वन्देमातरम्- धीरे-धीरे संतान-सेना पर्वत शिखर पर चढ़ने लगी। किंतु उन लोगों ने सहसा देखा कि महेंद्र बड़ी ही तेजी से उतरे चले आ रहे हैं। उतरते हुए महेंद्र ने महानिदान किया। देखते-देखते पर्वत-शिखर पर नीलाकाश में अंगरेजों की तोपें आ लगीं। उच्च स्वर में वैष्णवी सेना ने गाया-

तुमी विद्या तुमी भक्ति,

तभी मां बाहुते शक्ति,

त्वं हि प्राण: शरीरे!..

लेकिन इसी समय अंगरेजों की तोपें गर्जन कर उठीं- आग उगलने लगी, उस महानिनाद में गीत की आवाज गायब हो गई। बार-बार गुड्डम-गुड्डम करती हुई अंग्रेजों की तोपें गर्जन पर संतान-सेना का नाश करने लगीं। खेत में जैसे फसल काटी जाती है, उसी तरह संतान-सेना कटने लगी। यह ऊपर की भयानक मार संतान-सेना न सह सकी, तुरंत भाग खड़ी हुई- जिसे जिधर राह मिली, वह उधर ही भागा। इस पर हुर्र, हुर्र करती हुई ब्रिटिश वाहिनी संतानों का समूल नाश करने के लिए उतरने लगी। संगीने चढ़कर, पर्वत से गिरनेवाली भयंकर शिला की तरह, शिक्षित गोरी फौज संतानों को खदेड़ती हुई तीव्र वेग से उतरने लगी। जीवानंद ने महेंद्र को सामने देखकर कहा-बस आज अंतिम दिन है। आओ यहीं

मरें।

पदचिन्ह के नये दुर्ग में आज बड़े सुख से महेन्द्र, कल्याणी, जीवानंद, शांति निमाई के पति और सुकुमारी - सब एकत्र हैं। सब आज सुख में विभोर हैं-आनंदमग्न हैं। शांति जिस रात कल्याणी को ले आयी, उसी रात उसने कह दिया था कि वह अपने पति महेन्द्र से यह न कहे, कि नीवनानंद जीवानंद की पत्नी है। एक दिन कल्याणी ने उसे अंत:पुर में बुला भेजा! नवीनानंद अत:पुर में घुस गया। उसने प्रहरियों की एक न सुनी।

शांति ने कल्याणी के पास आकर पूछा-क्यों बुलाया है?

कल्याणी -पुरुष-वेश में कितने दिनों तक रहेगी? न मुलाकात हो पाती है, न बातें होती हैं। मेरे पति के सामने तुम्हें प्रकट होना पड़ेगा।

नवीनानंद बड़ी चिन्ता में डूब गये- कुछ देर तक बोले ही नहीं। अन्त में बोले-इनमें अनेक विघ्न हैं, कल्याणी!

दोनों में इसी तरह बातें होने लगीं। इधर जो प्रहरी नवीनानंद को जोर देकर अन्त:पुर में जाने से मना कर रहे थे, उन्होंने महेन्द्र से जाकर कहा कि नवीनानंद जबरदस्ती, मना करने पर भी अन्दर चले गये हैं। कौतूहलवश महेन्द्र भी अन्त:पुर में गये। महेन्द्र ने सीधे कल्याणी के कमरे में जाकर देखा कि नवीनानंद कमरे में खड़े हैं और कल्याणी उनके शरीर के बाघम्बर की गांठ खोल रही है। महेन्द्र बड़े अचम्भे में आए- बहुत ही नाराज हुए।

नवीनानंद ने उन्हें देख हंसकर कहा- क्यों, गोस्वामी जी! सन्तान पर अविश्वास?

महेन्द्र ने पूछा- क्या भवानंद विश्वासी थे?

नवीनानंद ने आंखे दिखाकर कहा-कल्याणी क्या भवानंद के शरीर पर हाथ रखकर बाघ की खाल खोलती थी? यह कहते हुए शांति ने कल्याणी का हाथ दबाकर पकड़ लिया बाघम्बर खोलने न दिया।

महेन्द्र -तो इससे क्या हुआ?

नवीनानंद-मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं लेकिन कल्याणी पर कैसे अविश्वास कर सकते हैं?

अब महेन्द्र अप्रतिभ हुए बोले- कहां, मैं अविश्वास कब करता हूं?

नवीनानंद -नहीं तो मेरे पीछे अंत:पुर में क्यों आ उपस्थित हुए?

महेन्द्र - कल्याणी से कुछ बातें करनी थी, इसलिए आया हूं।

नवीनानंद -तो इस समय जाइए! कल्याणी के साथ मुझे भी कुछ बातें करनी हैं। आप चले जाइए, मैं पहले बात करूंगा। आपका तो घर है, आप जब चाहें आकर बात कर सकते हैं। मैं तो बड़े कष्ट से आ पाया हूं।

महेन्द्र बेवकूफ बन गये। वे कुछ भी समझा न पाते थे- यह सब बात तो अपराधियों जैसी नहीं है। कल्याणी का भाव भी विचित्र है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह भागी नहीं, न डरी, न लज्जित ही हुई, वरन् मृदु भाव से मुस्करा रही है। वही कल्याणी, जिसने पेड़ के नीचे सहज ही विष खा लिया- वह क्या अपराधिनी हो सकती है?.. महेंद्र के मन में यही तर्क-वितर्क हो रहा था। इसी समय शांति ने महेंद्र की यह दुरवस्था देख, कुछ मुस्कराकर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्षपात किया। सहसा अंधकार मिट गया- भला ऐसा कटाक्षपात भी कभी पुरुष कर सकते है। समझ गए कि नवीनानंद कोई स्त्री है। फिर भी शक था। उन्होंने साहस बटोरा और आगे बढ़कर एक झटके में नवीनानंद की ढाढ़ी खींच ली- ढाढ़ी-मूंछ हाथ में आ गई। इसी समय अवसर पाकर कल्याणी ने बाघम्बर की गांठ खोल दी पकड़ी जाकर शांति शरमा कर सिर नीचा कर खड़ी रह गई।

अब महेंद्र ने शांति से पूछा- तुम कौन हो?

शांति- श्रीमान नवीनानंद गोस्वामी?

महेंद्र- वह तो ठगी थी, तुम तो स्त्री हो!

शांति- यह तो देखते ही हैं आप!

महेंद्र- तब एक बात पूछूं- तुम स्त्री होकर जीवानंद के साथ हर समय क्यों रहती थी?

शांति- यह बात आप को न बताऊंगी।

महेंद्र-तुम स्त्री हो, यह जीवानंद स्वमी जानते हैं?

शांति- जानते हैं।

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेंद्र बहुत दुखी हुए।

यह देखकर अब कल्याणी चुप न रह सकी, बोली- ये जीवानंद स्वामी की धर्मपत्नी शांति देवी है?

एक क्षण के लिए महेंद्र का चेहरा प्रसन्न हो उठा। इसके बाद ही उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। कल्याणी समझ गई, ये पूर्ण ब्रह्मचारिणी है।

महेंद्र ने कहा-मरने से यदि रण-विजय हो, तो कोई हर्ज नहीं, किंतु व्यर्थ प्राण गंवाने से क्या मतलब? व्यर्थ मृत्यु वीर-धर्म नहीं है।

जीवानंद-मैं व्यर्थ ही मरूंगा, लेकिन युद्ध करके मरूंगा।

कहकर जीवानंद ने पीछे पलटकर कहा-भाईयों! भगवान की शपथ लो कि जीवित न लौटेंगे।

जीवानंद ने घोड़े की पीठ पर से ही, बहुत पीछे खड़े महेंद्र से कहा-भाई महेंद्र! नवीनंद से मुलाकात हो तो कह देना कि परलोक में मुलाकात होगी।

यह कहकर वह वीरश्रेष्ठ बाएं हाथ में बलम आगे किए हुए और दाहिने हाथ से बंदूक चलाते, मुंह से हरे मुरारे! हरे मुरारे!! कहते हुए तीर की तरह उस बरसती हुई आग को चीरते हुए टीले पर बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे। इस तरह महान् साहस का परिचय देते हुए और शतुक्षय करते हुए जीवानंद अकेले अभिमन्यु की तरह शतु-व्यूह में घुसते चले जा रहे थे, मानो एक मस्त हाथी कमल-वन को रौंदता चला जाता हो।

भागती हुई संतान-सेना को दिखाकर महेंद्र ने कहा-देखो, कायरों! भागनेवालों- अपने सेनापति का साहस देखो! देखने से जीवानंद मर नहीं सकते।

संतानों ने पलटकर जीवानंद का अद्भुत साहस प्रत्यक्ष देखा। पहले उन सबने देखा, फिर बोले-स्वामी जीवानंद मरना जानते हैं, तो क्या हम नहीं जानते? चलो जीवानंद के साथ बैकुंठ चलें!

बस, यहीं से रण ने पलटा खाया। संतान-सेना पलट पड़ी। पीछे भागनेवालों ने देखा कि पलट रहे हैं, तो उन्होंने समझा कि संतानों की विजय हुई है। अत: वे भी तुरंत चल पड़े।

महेंद्र ने देखा कि जीवानंद शत्रुओं की सेना में घुस गए हैं, अब दिखाई नहीं पड़ते। उन्मत्त संतान-सेना ने टीले से उतरी हुई अंग्रेज-वाहिनी पर प्रचंड आक्रमण किया- अंगे्रजों के पैर उखड़ गए। वे लोग इस आक्रमण को सह न सके, उनकी संगीने पलटकर भागने की तरफ दिखाई दीं। पीछे चढ़ती हुई संतान-सेना उनका विनाश करती जा रही थी। भागी हुई संतान-सेना अभी तक बराबर पलटती हुई रण भूमि में चढ़ती जाती थी।

महेंद्र खड़े यह देख रहे थे। सहसा पर्वत-शिखर पर संतानों की पताका उड़ती दिखाई दी। वहां सत्यानंद महाप्रभु, स्वयं चक्रपाणि विष्णु की तरह बाएं हाथ में ध्वजा लिए हुए और दाहिने में रक्त से लाल तलवार लिए खड़े थे। वह देखते ही संतानों में अपूर्व बल आ गया- हरे मुरारे! का गगन में वह जयनाद हुआ कि वस्तुत: वसुंधरा कांपती हुई नजर आई।

इस समय अंग्रेजी सेना दोनों दलों के बीच में थी- ऊपर प्रभु सत्यानंद ने तोपों पर अधिकार कर लिया था, नीचे से संतान-सेना पलटकर चढ़ती हुई मार रही थी।

महेंद्र ने देखा कि ऊपर से वन्देमातरम् का निनाद करते हुए सत्यानंद, अवशिष्ट ब्रिटिश वाहिनी के नाश के लिए उतरे। इधर से बची हुई सेना लेकर महेंद्र ने संतानों को साहस दिलाते हुए भयंकर आक्रमण कर दिया। मध्य टीले पर भयंकर युद्ध हुआ। अंग्रेज चक्की के दो पाटों में फंसे चने की तरह पिसने लगे। थोड़ी ही देर में एक भी ब्रिटिश सैनिक खड़ा न दिखाई दिया। धरती लाल हो गई- रक्त की नदी बह गई।

वहां ऐसा भी कोई न बचा, जो वारेन हेस्टिंग्स के पास खबर ले जाता।

पूर्णिमा की रात है। यह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ों की टाप की आवाज,

बंदूकों की गरज और गोलों की वर्षा गायब हो गई है। न कोई हुर्रे करता है न कोई हरे मुरारे। आवाज आती है, तो केवल कुत्तों और स्यारों की। रह-रहकर घायलों का क्रंदन सुनाई पड़ता है। किसी का पैर कटा है, किसी का हाथ कटा है, किसी का पंजर घायल हुआ है। कोई राम को पुकारता है, कोई गॉड। कोई पानी मांगता है, कोई मृत्यु का आह्वान करता है। उस चांदनी रात में श्याम भूमि लाल वसन पहनकर भयानक हो गई थी। किसकी हिम्मत थी कि वहां जाता?

साहस तो किसी का नहीं है लेकिन उस निस्तब्ध भयंकर रात में भी एक रमणी उस अगम्य रणक्षेत्र में विचरण कर रही है। वह एक मशाल लिए रणक्षेत्र में किसी को खोज रही है- हरेक शव का मुंह रोशनी में देखकर दूसरे के पास चली जाती है। कहीं कोई मृत देह अश्व के नीचे पड़ी है, तो वहीं मुश्किल से मशाल रख, दोनों हाथों से अश्व को हटाकर शव देखती और हताश हो आगे बढ़ जाती है। वह जिसे खोज रही थी, उसे न पाया। अब वह मशाल छोड़, रक्तमय जमीन पर पछाड़ खा गिरकर रोने लगी। पाठकों! यह शांति है वीर जीवानंद के शव को खोज रही है।

शांति जिस समय जमीन पर गिरकर रो रही थी, उसी समय उसे एक मधुर करुण शब्द सुनाई पड़ा-उठो, बेटी!, रोओ नहीं। शांति ने देखा, चांदनी रात में सामने एक जटाजूटधारी विराट महापुरुष खड़े हैं।

उस रात राह में दल-के-दल घूम रहे थे। कोई मार-मार कहता है, तो कोई भागो-भागो चिल्लाता है। कोई हंसता है, कोई रोता है, कोई राह में किसी को देखकर पकड़ लेता है। कल्याणी बड़ी विपदा में पड़ी। राह मालूम नहीं, और फिर किसी से पूछ भी नहीं सकती, केवल छिपती हुई राह चलने लगी। छिपते-छिपते एक विद्रोही दल के हाथ में पड़ गई। वे लोग चिल्लाकर पकड़ने दौड़े। कलुयाणी प्राण लेकर जंगल के अंदर घुसकर भागी। वे सब शोर मचाते हुए पकड़ने के लिए पीछे दौड़े। आखिर एक ने आंचल पकड़ लिया, बोला- वाह री, चंद्रमुखी! इसी समय एक और आदमी अकस्मात पहुंच गया और अत्याचारी को उसने एक लाठी जमायी; वह आहत होकर भागा। परित्राणकर्ता का वेश संन्यासियों का था

और उसकी छाती ढंकी हुई थी! उसने कल्याणी से कहा- तुम भय न करो। मेरे साथ आओ- कहां जाओगी?

कल्याणी-पदचिह्न।

आगंतुक चौंक उठा, विस्मित हुआ; पूछा- क्या कहा? पदचिह्न? यह कहकर कल्याणी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर गौर से चेहरा देखने लगा।

कल्याणी अकस्मात पुरुष-स्पर्श से भयभीत तथा रोमांचित होकर रोने लगी। इतनी हिम्मत नहीं हुई कि भाग सके। आगन्तुक ने भरपूर देख लेने के बाद कहा- ओ हो, पहचान गया! तुम्ही डायन कल्याणी हो?

कल्याणी ने भयविह्वल होकर पूछा- आप कौन हैं?

आगन्तुक ने कहा, मैं तुम्हारा दासानुदास हूं। हे सुन्दरी! मुझ पर प्रसन्न हो।

कल्याणी बड़ी तेजी से वहां से हटकर गर्जन कर बोली- क्या यह अपमान के लिए ही आपने मेरी रक्षा की थी? देखती हूं , ब्रह्मचारियों का क्या यही धर्म है? आज मैं नि:सहाय हूं, नहीं तो तुम्हारे चेहरे पर लात लगाती।

ब्रह्मचारी ने कहा-अयि स्मितवदने! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे पुष्प समान कोमल शरीर के आलिंगन की कामना कर रहा हूं? यह कहकर दौड़कर ब्रह्मचारी ने कल्याणी को पकड़ लिया और जबर्दस्ती छाती से लगा लिया। अब कल्याणी खिलखिला कर हंस पड़ी, बोली यह तुम्हारा कपाल है। पहले ही कह देना था- भाई, मेरी भी यही दशा है। शान्ति ने पूछा- क्यों भाई! महेन्द्र की खोज में चली हो?

कल्याणी ने कहा-तुम कौन हो? तुम तो सब कुछ जानती हो!

शान्ति बोली-मैं ब्रह्मचारी हूं, सन्तान -सेना का अधिनायक -घोरतर वीर पुरुष! मै सब जानता हूं आज राह में सिपाहियों का बहुत हुड़दंग ऊधम है, अत: आज तुम पदचिन्ह जा न सकोगी!

कल्याणी रोने लगी।

शान्ति ने त्योरी बदलकर कहा-डरती क्यों हो? हम अपने नयनबाणों से हजारों का वध कर सकते हैं- चलो, पदचिन्ह चलें।

कल्याणी ने ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पाकर मानो हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पा लिया । बोली- तुम जहां कहोगी, वहीं चलूंगी।

शान्ति कल्याणी को लेकर जंगली राह से चल पड़ी।

जब आधी रात को शान्ति अपना आश्रम त्यागकर नगर की तरफ चली, तो उस समय जीवानंद वहां उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानंद से कहा- मै नगर की तरफ जाती हूं । महेन्द्र की स्त्री को ले आऊंगी। तुम महेन्द्र से कह रखो कि तुम्हारी स्त्री जीवित है।

जीवानंद ने भवानंद से कल्याणी के जीवन की सारी बातें सुनी थीं और उसका वर्तमान वास-स्थान भी सुन चुके थे। क्रमश: ये सारी बातें महेन्द्र को सुनाने लगे।

पहले तो महेन्द्र को विश्वास न हुआ। अन्त में अपार आनंद से अभिभूत अवाक हो रहे।

उस रात के बीतने पर सबेरे, शान्ति की सहायता से महेन्द्र के साथ कल्याणी की मुलाकात हुई । निस्तब्ध जंगल के बीच अतिघनी शालतरू श्रेणी की अंधेरी छाया के बीच, पशु-पक्षियों की निद्रा टूटने के पहले उन लोगों का परस्पर मिलन हुआ। म्लान अरण्य में फूटनेवाली पहली आभामयी किरणें और नक्षत्रराज ही साक्षी थे। दूर शिला-संघर्षिणी नदी का कलकल प्रवाह हो रह था तो कहीं अरुणोदय की लालिमा से प्रफुल्ल-हृदय कोकिल की कुहू ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी।

क्रमश: एक पहर दिन चढ़ा। वहां शांति और जीवानंद आये। कल्याणी ने शांति से कहा- मै आप लोगों के हाथ बिना मूल्य के बिक चुकी हूं। मेरी कन्या का पता लगाकर मेरे उस उपकार को पूर्ण कीजिए।

शांति ने जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा- मै अब सोऊं गा। आठ पहर बीते, मैं बैठा तक नहीं। आखिर मैं भी पुरुष हूं!

कल्याणी जरा मुस्कुरा दी। जीवानंद ने महेन्द्र की तरफ देखकर कहा- यह भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिन्ह की यात्रा कीजिए- वहीं आपकी कन्या पहुंचा दूंगा!

जीवानंद भैरवीपुर-निवासी बहिन के पास से लड़की लाने चले। पर कार्य सरल न था!

पहले तो निमाई बात ही खा गई। इधर-उधर ताका, फिर एक-बारगी उसका मुंह फूलकर कुप्पा हो गया! इसके बाद वह रो पड़ी, बोली-लड़की न दूंगी।

निमाई अपनी उल्टी हथेलियों से आंसू पोछने लगी। जीवानंद ने कहा- अरे बहन! तू रोती क्यों? ऐसा दूर भी तो नहीं है- न हो, बीच-बीच में उन लोगों के घर जाकर लड़की को देख आया करना।

निमाई ने होंठ फुलाकर कहा- तो तुम लोगों की लड़की है, ले क्यों नहीं जाते? मुझसे क्या मतलब? यह कहकर निमाई लड़की को उठा लाई और जीवानंद के पैर के पास पटककर वहीं बैठकर रोने लगी। अत: जीवानंद और कोई फुसलाने की राह न देखकर इधर-उधर की बातें करने लगे। लेकिन निमाई का क्रोध न गया। निमाई उठकर सुकुमारी के पहनने के कपड़े, उसके खेलने के खिलौने- बोझ के बोझ लाकर जीवानंद के सामने पटकने लगी। सुकुमारी स्वयं उन सबको बटोरने लगी। उसने निमाई से पूंछा- क्यों मां ! मै कहां जाऊंगी? अब निमाई सह न सकी। उसने सुकुमारी को गोद में उठा लिया ओर चली गयी।

उत्तर बंगाल मुसलमानों के हाथ से निकल गया- यह बात मुसलमान मानते नहीं, दलील पेश करते है कि बहुतेरे डाकुओं का उपद्रव है- शासन तो हमारा ही है। इस तरह कितने वर्ष बीत जाते नहीं कहा जा सकता। लेकिन भगवान की इच्छा से वारेन हेटिंग्स इसी समय कलकत्ते में गवर्नर- जनरल होकर आए। वारेन हेटिंग्स मन ही मन संतोष करने वाले आदमी न थे, अन्यथा भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित कर न पाते। उन्होंने तुरंत संतानों के दमनार्थ मेजर एडवर्ड नाम के एक दूसरे सेनापति को खड़ा कर दिया। मेजर ताजा गोरी फौज लेकर तैयार हो गए।

एडवर्ड ने देखा कि यह यूरोपीय युद्ध नहीं है। शतुओं की सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, दुर्ग नहीं, फिर भी सब उनके अधीन है। जिस दिन जहां ब्रिटिश सेना का पड़ाव पड़ा,

उस रोज वहां ब्रिटिश अधिकार रहा, दूसरे दिन शिविर टूटते ही फिर वन्देमातरम की ध्वनि गूंजने लगी। साहब सर पटककर रह गये, पर यह पता न लगा कि एक क्षण में कहां से टिड्डियों की तरह विद्रोही सेना इकट्ठी हो जाती, ब्रिटिश अधिकृत गांवों को फूंक देती है और रक्षकों की छोटी टुक़डियों का सफाया करने के बाद फिर गायब हो जाती है? बड़ी खोज के बाद उन्हें मालूम हुआ कि पदचिन्ह में सन्तानों ने दुर्ग -निर्माण कर रखा है उसी दुर्ग पर अधिकार करना युक्तिसंगत समझा।

वह खुफियों द्वारा यह पता लगाने लगा कि पदचिन्ह में कितनी सन्तान-सेना रहती है। उसे जो समाचार मिला, उससे उस समय उसने दुर्ग पर आक्रमण करना उचित समझा। मन-ही-मन उसने एक अपूर्व कौशल की रचना की।

माघी पूर्णिमा सामने उपस्थित थी। उनके शिविर के निकट ही नदी तट पर बहुत बड़ा मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारी है। मेले में सहज ही कोई एक लाख आदमी एकत्र होते हैं। इस बार वैष्णव राजा हुए है- शासक हुए हैं, अत: वैष्णवों ने इस बार मेले में आने का संकल्प कर लिया है। पदचिन्ह के रक्षक भी अवश्य ही मेले में पहुंचेंगे, इसकी कल्पना मेजर ने कर ली। उन्होंने निश्चय किया कि पदचिन्ह पर उसी समय आक्रमण कर अधिकार करना चाहिए।

यह सोचकर मेजर सने अफवाह उड़ा दी कि वे मेले पर आक्रमण करेंगे, उसी दिन वहां तमाम वैष्णव सन्तान इकट्ठे रहेंगे, अत: एक बार में ही उनका समूल विध्वंस होगा- वे वैष्णवों का मेला होने न देंगे।

यह खबर गांव-गांव में प्रचारित की गयी। अत: स्वभावत: जो संतान जहां था, वह वहीं से अस्त्र ग्रहण कर मेले की रक्षा के लिए चल पड़ा। सभी संतानें माघी पूर्णिमा के मेले वाले नदी-तट पर आकर सम्मिलित होने लगे। मेजर साहब ने जो जाल फेंका था, वह सही होने लगा। अंगरेजों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी उस जाल में पांव डाल दिया। महेन्द्र ने पदचिन्ह में थोड़ी सी सेना छोड़कर शेष सारी सेना के साथ मेले के लिए प्रयाण किया।

यह सब होने के पहले ही जीवानंद और शांति पदचिन्ह से बाहर निकल गये थे। उस समय तक युद्ध की कोई बात नहीं थी, अत: युद्ध की तरफ उनका कोई ध्यान भी न था। माघी पूर्णिमा के दिन पवित्र जल में प्राण-विसर्जन कर वे लोग अपना प्रायश्चित करेंगे, यह पहले

से निश्चित हो चुका था। राह में जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेले में समस्त संतानों पर अंगरेजों का आक्रमण होगा तथा भयानक युद्ध होगा। इस पर जीवानंद ने कहा-तब चलो, युद्ध में ही प्राण-विसर्जन करेंगे।

वे लोग जल्दी-जल्दी चले। एक जगह रास्ता टीले के ऊपर से गया था। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पति ने देखा कि नीचे थोड़ी दूर पर अंगरेजों का शिविर पड़ा हुआ है। शांति ने कहा-मरने की बात इस समय ताक पर रखो, बोली - वन्देमातरम!

इस पर दोनों ने ही चुपके-चुपके कुछ सलाह की। फिर जीवानंद पास के एक जंगल में छिप गए। शांति एक दूसरे में घुसकर अद्भुत काण्ड में प्रवृत्त हुई।

शांति मरने जा रही थी, लेकिन उसने मृत्यु के समय स्त्री-वेश धारण करने का निश्चय किया था। महेंद्र ने कहा था कि उसका पुरुष वेश ठगौती है, ठगी करते हुए मरना उचित नहीं। अत: वह साथ में अपना पिटारा लाई थी। उसमें उसकी पोशाक रहती थी। इस समय नवीनानंद पिटारा खोलकर अपना वेश परिवर्तन करने बैठे।

चिकने बालों को पीठ पर फहराए हुए, उस पर खैर का टीका-फटीका लगाकर नवीन लता-पुष्पों से सर ढंककर शांति खासी-वैष्णवी बन गई। सारंगी उसने हाथ में ले ली। इस तरह का वह अंगरेज-शिविर पहुंच गई। काली मूंछोंवाले सिपाही उसे देखकर पागल हो उठे। चारों तरफ से लोगों ने उसे घेरकर गवाना शुरू किया। कोई ख्याल गवाता, तो कोई टप्पा, कोई गजल। किसी ने दाल दिया, किसी ने चावल, तो किसी ने मिठाई। किसी ने पैसे दिए, तो किसी ने चवन्नी ही दे दी। इसी तरह वैष्णवी अपनी आंखें से शिविर का हाल-चाल देखती घूमने लगी।

सिपाहियों ने पूछ-अब कब आओगी?

वैष्णवी ने कहा-कैसे बताऊं, मेरा घर बड़ी दूर है।

सिपाहियों ने पूछा-कितनी दूर?

वैष्णवी ने कहा-मेरा घर पदचिन्ह में है।

शांति उठकर खड़ी हो गई! जो आए थे, उन्होंने कहा-रोओ नहीं, बेटी! जीवानंद शांति ने पहचाना-वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत-विक्षत, रुधिर से सने हुए थे। शांति यह कहकर वे महापुरूष शांति को रणक्षेत्र के मध्य में ले गए। वहीं शवों का एक स्तूप लगा हुआ था। शांति उसे हटा न सकी थी। उस महापुरुष ने स्वयं शवों को हटाकर एक शव बाहर निकाला। शांति ने पहचाना- वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत-विक्षत रुधिर से सने हुए थे। शांति सामान्य स्त्री की तरह जोरों से रो पड़ी।

महापुरुष ने फिर कहा-रोओं नहीं बेटी! क्या जीवानंद मर गए हैं? शांत होकर उनका शरीर देखो, नाड़ी की परीक्षा करो!

शांति ने शव की नाड़ी देखी, नाड़ी का पता न था। वे बोले-छाती पर हाथ रखकर देखो।

शांति ने छाती पर हाथ रखकर देखा, गतिहीन ठंढा था!

फिर महापुरुष ने कहा-नाक पर हाथ रखकर देखो, कुछ भी श्वास नहीं है?

शांति ने देखा, किंतु हताश हो गई।

महापुरुष ने फिर कहा-मुंह में उंगली डालकर देखो, कुछ गरमी मालूम पड़ती है?

आशामुग्धा शांति ने वह भी किया, बोली-मुझे कुछ पता नहीं लगता है।

महापुरुष ने बायां हाथ शव पर रखकर कहा-बेटी, तुम घबरा गई हो। देखो अभी देह में हलकी गरमी है!

अब शांति ने फिर नाड़ी देखी- देखा कि मन्द, अतिमन्द गति है। विस्मित होकर उसने छाती पर हाथ रखा- मृदुधड़कन है। नाक पर हाथ रखकर देखा- हल्की सांस है। शांति ने विस्मित होकर पूछा-क्या प्राण था? या फिर से आ गया है?

उन्होंने कहा-भला ऐसा कभी हुआ है, बेटी! तुम इन्हें उठाकर तालाब के किनारे तक ले चल सकोगी? मैं चिकित्सक हूं, इनकी चिकित्सा करूंगा।

शांति जीवानंद को तालाब पर ले जाकर घाव धोने लगी। इसी समय उन महापुरुष ने लता आदि का प्रलेप लाकर घावों पर लगा दिया। इसके बाद वे जीवानंद का शरीर सहलाने

लगे। अब जीवानंद के श्वास-प्रश्वास तेज हो गए। कुछ ही क्षण में उठ बैठे। शांति के मुंह की तरफ देखकर उन्होंने पूछा-युद्ध में किसकी विजय हुई?

शांति ने कहा-तुम्हारी विजय! इन महात्मा को प्रणाम करो?

अब दोनों ने देखा कि वहां कोई नहीं है, किसे प्रणाम करें!

समीप ही संतान-सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा था। लेकिन शांति या जीवानंद में से कोई भी न उठा। दोनों विमल ज्योस्तना में पुष्करिणी-तट पर बैठे रहे। जीवानंद का शरीर अद्भुत औषध बल से जल्द ही ठीक हो गया। जीवानंद ने कहा-शांति! चिकित्सक की दवा में गुण है। अब मेरे शरीर में जरा भी ग्लानि या कष्ट नहीं है। बोलो, अब कहां चलें संतान सेना का जयोल्लास सुनाई पड़ रहा है!

शांति बोली-अब वहां नहीं। माता का कार्योद्धार हो गया है। अब यह देश संतानों का है। अब वहां क्या करने चलें?

जीवानंद-जो राज्य छीना है उसकी बाहुबल से रक्षा तो करनी होगी।

शांति-रक्षा के लिए महेंद्र है। तुमने प्रायश्चित कर संतान-धर्म के लिए प्राण-त्याग दिया था। अब पुन: प्राप्त इस जीवन पर संतानों का अधिकार नहीं है। हमलोग संतानों के लिए मर चुके हैं। अब हमें देखकर संतान लोग कह सकते हैं कि प्रायश्चित के भय से ये लोग छिप गए थे, अब विजय होने पर प्रकट हो गए हैं- राज्य-भाग लेने आए हैं।

जीवानंद-यह क्या शांति? लोगों के अपवाद-भय से अपना कर्त्तव्य छोड़ दें। मेरा कार्य मातृसेवा है। दूसरा चाहे जो कहे, मैं मातृ-सेवा करूंगा।

शांति-अब तुम्हें इसका अधिकार नहीं है, क्यों कि तुमने मातृ-सेवा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अब-यदि सेवा करोगे, तो तुमने उत्सर्ग क्या किया? मातृ-सेवा से वंचित होना ही प्रधान प्रायश्चित है। अन्यथा जीवन त्याग देना क्या कोई बड़ा काम है?

जीवानंद-शांति! तुमने ठीक समझा। लेकिन मैं अपने प्रायश्चित को अधूरा न रखूंगा। मेरा सुख संतान-धर्म में है, लेकिन कहां जाऊंगा? मातृ-सेवा त्यागकर घर जाने में क्या सुख मिलेगा?

शांति-यह तो मैं कहती नहीं हूं। हम लोग अब गृहस्थ नहीं है, हम दोनों ही संन्यासी रहेंगे-

फिर ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। चलो हम लोग देश-पर्यटन कर देव-दर्शन करें।

जीवानंद-इसके बाद?

शांति-इसके बाद हिमालय पर कुटी का निर्माण कर हम दोनों ही देवाराधना करेंगे- जिससे माता का मंगल हो, यही वर मांगेंगे।

इसके बाद दोनों ही उठकर हाथ में हाथ दे, ज्योत्सनामयी रात्रि में अन्तर्हित हो गए।

हाय मां! क्या फिर जीवानंद सदृश पुत्र और शांति जैसी कन्या तुम्हारे गर्भ में आएंगे?

एक सिपाही ने सुना था कि मेजर साहब पदचिन्ह की खबर लिया करते हैं, तुरंत वह वैष्णवी को मेजर साहब के शिविर में ले गया। मेजर साहब को देखकर वैष्णवी ने मधुर कटाक्ष का बाण छोड़ा। मेजर साहब का तो सर चक्कर खा गया। वैष्णवी तुरंत खंजड़ी बजाकर गाने लगी-

मलेच्छ निवहनितमे कलयसि करवालम्

साहब ने पूछा-ओ बीबी! टोमारा घड़ कहां?

बीबी बोली-मैं बीबी नहीं हूं, वैष्णवी हूं। मेरा घर पदचिन्ह में है।

साहब -ह्वेयर इज दैट एडसिन पेडसिन? होआं ऐ ठो घर हाय?

बैष्णवी बोली-घर? है।

साहब-घर नई-गर-गर-नई-गड़-

शांति-साहब! मैं समझ गई, गढ़ कहते हो?

साहब-येस-येस, गर-गर..हाय?

शांति-गढ़ है-भारी किला है।

साहब-केहा आडमी?

शांति-गढ़ में कितने लोग रहते हैं? करीब बीस-पचीस हजार।

साहब-नान्सेंस- एक ठो केल्ला में दो-चार हजर हने सकटा। अबी हुई पर हाय कि सब चला गिया?

शांति-वे सब मेले में चले जाएंगे!

साहब-मेला में टोम कब आया होआं से?

शांति-कल आए हैं साहब!

साहब-ओ लोग आज निकेल गिया होगा?

शांति मन-ही-मन सोच रही थी कि-तुम्हारे बाप के श्राद्ध के लिए यदि मैंने भात न चढ़ाया, तो मेरी रसिकता व्यर्थ है। कितने स्यार तेरा मुंड खाएंगे, मैं देखूंगी। प्रकट रूप में बोली-साहब! ऐसा हो सकता है, ऐसा हो सकता है। आज चला गया हो सकता है। इतनी खबर मैं नहीं जानती। बैष्णवी हूं, मांगकर खाती हूं-गाना गाती हूं, तब आधा पेट भोजन पाती हूं। इतनी खबर मैं क्या जानूं? बकते-बकते गला सूख गया- पैसा दो, मैं जाऊं। और अच्छी तरह बख्शीश दो, तो परसों खबर दूं।

साहब ने झन से एक रुपया फेंकते हुए कहा-परसों नहीं, बीबी!

शांति बोली-दुर बेटा, बैष्णवी कहो, बीबी क्या?

साहब-परसू नहीं, आज रात को खबर मिलने चाही।

शांति-बंदूक माथे के पास रखकर नाक में कड़वा तेल छुड़वाकर सोओ। आज ही मैं दस कोस रहा तय कर जाऊं और आज ही फिर लौट आऊं- और तुम्हें खबर दूं? घासलेटी कहीं के!

साहब-घासलेटी किसको बोलता?

शांति-जो भारी वीर, जेनरल होता है।

साहब-ग्रेट जेनरल हाम होने सकता। हाम-क्लाइव का माफिक। लेकिन आज ही हमको

खबर मेलना चाही। सौ रूपी बख्शीश देगा।

शांति-सौ दो, हजार दो, बीस हजार दो-पर आज रात भर में मैं इतना नहीं चल सकतीं।

साहब-घोड़े पर?

शांति-घोड़ा चढ़ना जानती तो तुम्हारे तंबू में आकर भीख मांगती?

साहब-एक दूसरा आदमी ले जाएगा।

शांति-गोद में बैठाकर ले जाएगा? मुझे लज्जा नहीं है?

साहब-केया मुस्किल! पान सौ रूपी देगा।

शांति-कौन जाएगा-तुम खुद जाएगा?

इस पर एडवर्ड ने पास में खड़े एक युवक अंग्रेज को दिखाकर कहा-लिंडले, तुम जाओ! लिंडले ने शांति का रूप-यौवन देखकर कहा-बड़ी खुशी से!

इसके बाद बड़ा जानदार अरबी घोड़ा सजकर आ गया, लिंडले भी तैयार हो गया। शांति को पकड़कर वह घोड़े पर बैठने चला। शांति ने कहा-छि:, इतने आदमियों के सामने? क्या मुझे लज्जा नहीं है? आगे चलो, बाहर चलकर घोड़े पर चढ़ेंगे।

लिंडले घोड़े पर चढ़ गया। घोड़ा धीरे-धीरे चला, शांति पीछे-पीछे पैदल चली। इस तरह वे लोग छावनी के बाहर आए।

शिविर के बाहर एकांत आने पर शांति लिंडले के पैर पर पांव रखकर एक छलांग में पीठ पर पहुंच गई। लिंडले ने हंसकर कहा-तुम तो पक्का घुड़सवार है!

शांति-हम लोग ऐसे पक्के घुड़सवार है कि तुम्हारे साथ चढ़ने में लज्जा लगती है। छी:, रकाव के सहारे तुम लोग चढ़ते हो?

मारे शान के लिंडले ने रकाब से पैर निकाल लिया। इसी समय शांति ने पीछे से लिंडले को गला पकड़ कर छक्का दिया। वह तड़ाक से घोड़े पर से गिरा। घोड़ा भी भड़क उठा। फिर क्या था! शांति ने एक एंड़ लगाई और घोड़ा हवा से बातें करने लगा। शांति चार वर्ष तक सन्तानों के साथ रहकर पक्की घुड़सवार हो गई थी। बिना सीखे क्या जीवानंद का साथ दे सकती थी? लिंडले का पैर टूट गया और वह कराहने लगा। शांति हवा में उड़ती जाती

थी।

जिस वन में जीवानंद छिपे हुए थे, वहां पहुंचकर शांति ने जीवानंद को सारा समाचार सुनाया। जीवानंद ने कहा-तो मैं शीघ्र जाकर महेंद्र को सतर्क करूं। तुम मेले में जाकर सत्यानंद को खबर दो। तुम घोड़े पर जाओ, ताकि प्रभु शीघ्र समाचार पा सकें।

इस तरह दोनों आदमी दो तरफ रवाना हुए। यह कहना व्यर्थ है कि शांति फिर नवीनानंद के रूप में हो गई।

स्वामी सत्यानंद रणक्षेत्र में किसी से कुछ न कहकर आनंदमठ में लौट आए। वहां वे गंभीर रात्रि में विष्णु-मंडप में बैठकर ध्यानमग्न हुए। इसी समय उन चिकित्सक ने वहां आकर दर्शन दिया। देखकर सत्यानंद ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक बोले-सत्यानंद! आज माघी पूर्णिमा है।

सत्यादंन-चलिए मैं तैयार हूं। किंतु महात्मन्! मेरे एक संदेह को दूर कीजिए। मैंने क्या इसीलिए युद्ध-जय कर संतान-धर्म की पताका फहरायी थी?

जो आए थे, उन्होंने कहा-तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया, मुसलिम राज्य ध्वंस हो चुका। अब तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं, अनर्थक प्राणहत्या की आवश्यकता नहीं!

सत्यानंद-मुसलिम राज्य ध्वंस अवश्य हुआ है, किंतु अभी हिंदु राज्य स्थापित हुआ नहीं है। अभी भी कलकत्ते में अंगरेज प्रबल है।

वे बोले-अभी हिंदु-राज्य स्थापित न होगा। तुम्हारे रहने से अनर्थक प्राणी-हत्या होगी, अतएव चलो!

यह सुनकर सत्यानंद तीव्र मर्म-पीड़ा से कातर हुए, बोले-प्रभो! यदि हिंदू-राज्य स्थापित न होगा, तो कौन राज्य होगा? क्या फिर मुसलिम-राज्य होगा?

उन्होंने कहा-नहीं, अब अंगरेज-राज्य होगा

सत्यानंद की दोनों आंखों से जलधारा बहने लगी। उन्होंने सामने जननी-जन्मभूमि की प्रतिमा की तरफ देख हाथ जोड़कर कहा-हाय माता! तुम्हारा उद्धार न कर सका। तू फिर म्लेच्छों के हाथ में पड़ेगी। संतानों के अपराध को क्षमा कर दो मां! रणक्षेत्र में मेरी मृत्यु क्यों न हो गई?

महात्मा ने कहा-सत्यानंद कातर न हो। तुमने बुद्धि विभ्रम से दस्युवृत्ति द्वारा धन संचय कर रण में विजय ली है। पाप का कभी पवित्र फल नहीं होता। अतएव तुम लोग देश-उद्धार नहीं कर सकोगे। और अब जो कुछ होगा, अच्छा होगा। अंगरेजों के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार नहीं हो सकेगा। महापुरुषों ने जिस प्रकार समझाया है, मैं उसी प्रकार समझाता हूं- ध्यान देकर सुनो! तैंतिस कोटि देवताओं का पूजन सनातन-धर्म नहीं है। वह एक तरह का लौकिक निकृष्ट-धर्म, म्लेच्छ जिसे हिंदू-धर्म कहते हैं- लुप्त हो गया। प्रकृति हिंदू-धर्म ज्ञानात्मक- कार्यात्मक नहीं। जो अन्तर्विषक ज्ञान है- वही सनातन-धर्म का प्रधान अंग है। लेकिन बिना पहले बहिर्विषयक ज्ञान हुए, अन्तर्विषयक ज्ञान असंभव है। स्थूल देखे बिना सूक्ष्म की पहचान ही नहीं हो सकती। बहुत दिनों से इस देश में बहिर्विषयक ज्ञान लुप्त हो चुका है- इसीलिए वास्तविक सनातन-धर्म का भी लोप हो गया है। सनातन-धर्म के उद्धार के लिए पहले बहिर्विषयक ज्ञान-प्रचार की आवश्यकता है। इस देश में इस समय वह बहिर्विषयक ज्ञान नहीं है- सिखानेवाला भी कोई नहीं, अतएव बाहरी देशों से बहिर्विषयक ज्ञान भारत में फिर लाना पड़ेगा। अंगरेज उस ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित है- लोक-शिक्षा में बड़े पटु है। अत: अंगरेजों के ही राजा होने से, अंगरेजी की शिक्षा से स्वत: वह ज्ञान उत्पन्न होगा! जब तक उस ज्ञान से हिंदु ज्ञानवान, गुणवान और बलवान न होंगे, अंगरेज राज्य रहेगा। उस राज्य में प्रजा सुखी होगी, निष्कंटक धर्माचरण होंगे। अंगरेजों से बिना युद्ध किए ही, निरस्त्र होकर मेरे साथ चलो!

सत्यानंद ने कहा-महात्मन्! यदि ऐसा ही था- अंगरेजों को ही राजा बनाना था, तो हम लोगों को इस कार्य में प्रवृत्त करने की क्या आवश्यकता थी?

महापुरुष ने कहा-अंगरेज उस समय बनिया थे- अर्थ संग्रह में ही उनका ध्यान था। अब संतानों के कारण ही वे राज्य-शासन हाथ में लेंगे, क्योंकि बिना राजत्व किए अर्थ-संग्रह नहीं हो सकता। अंगरेज राजदण्ड लें, इसलिए संतानों का विद्रोह हुआ है। अब आओ, स्वयं ज्ञानलाभ कर दिव्य चक्षुओं से सब देखो, समझो!

सत्यानंद-हे महात्मा! मैं ज्ञान लाभ की आकांक्षा नहीं रखता-ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं। मैंने जो व्रत लिया है, उसी का पालन करूंगा। आशीर्वाद कीजिए कि मेरी मातृभक्ति अचल हो!

महापुरुष-व्रत सफल हो गया- तुमने माता का मंगल-साधन किया- अंगरेज राज्य तुम्हीं लोगों द्वारा स्थापित समझो! युद्ध-विग्रह का त्याग करो- कृषि में नियुक्त हो, जिसे पृथ्वी श्स्यशालिनी हो, लोगों की श्रीवृद्धि हो।

सत्यानंद की आंखों से आंसू निकलने लगे, बोले-माता को शत्रु-रक्त से शस्यशालिनी करूं?

महापुरुष-शत्रु कौन है? शत्रु अब कोई नहीं। अंगरेज हमारे मित्र हैं। फिर अंगरेजों से युद्ध कर अंत में विजयी हो- ऐसी अभी किसी की शक्ति नहीं?

सत्यानंद-न रहे, यहीं माता के सामने मैं अपना बलिदान चढ़ा दूंगा।

महापुरुष -अज्ञानवश! चलो, पहले ज्ञान-लाभ करो। हिमालय-शिखर पर मातृ-मंदिर है, वहीं तुम्हें माता की मूर्ति प्रत्यक्ष होगी।

यह कहकर महापुरुष ने सत्यानंद का हाथ पकड़ लिया। कैसी अपूर्व शोभा थी! उस गंभीर निस्तब्ध रात्रि में विराट चतुर्भुज विष्णु-प्रतिमा के सामने दोनों महापुरुष हाथ पकड़े खड़े थे। किसको किसने पकड़ा है? ज्ञान ने भक्ति का हाथ पकड़ा है, धर्म के हाथ में कर्म का हाथ है, विजर्सन ने प्रतिष्ठा का हाथ पकड़ा है। सत्यानंद ही शांति है- महापुरुष ही कल्याण है- सत्यानंद प्रतिष्ठा है- महापुरुष विसर्जन है।

विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को साथ ले लिया।